श्रीकृष्णलीला में जिनकी दृढ श्रद्धा एवं ब्रजरस के आस्वादन में विशेष

अभिरुचि हो, वेही इस ग्रन्थ के अवलोकन की कृपा करें।

कोई महाशय अनधिकार चेष्टा न करें।

नीलाचल में ब्रजमाधुरी

गौरः कृष्ण इति स्वयंप्रतिफलन्पुण्यात्मनां मानसे,
नीलाद्रौ नटतीह संप्रथयते वृन्दावनीयं रसम्।
आद्यः कोऽपि पुमान्नवौत्सुकवधूकृष्णानुरागव्यथा—
स्वादी चित्रमहो विचित्रमहहो चैतन्यलीलायितम्॥

अनुवादक एवं प्रकाशक

(आचार्य) श्रीबालकृष्ण (गोस्वामी)

श्रीधाम वृन्दावन

सं० १९९४

अक्रूर-तीर्थस्थ
श्रीकृष्णचैतन्य पीठ से
प्रकाशित।

श्रीपीठ परिचारक-बालकृष्ण

शुभाशीर्वाद

श्रीमन्महाप्रभु के जिन प्रेमी भक्तों ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में आर्थिक सहायता कर अपने प्रेम का परिचय प्रदान किया है, उनके पवित्र नामों का यहाँ स्मरण करना परमावश्यक है:—

श्रीमान् दीवान गणेशदास जी	पेशावर
श्रीमान् बाबू जगमोहनलाल जी सक्सेना डि० जज	उज्जैन
श्रीमान् बाबू बांकेबिहारी लाल जी (बांके पिया)	लखनौ
श्रीमान् जोहरी रूपनारायण जी, गैंदीलाल जी	जयपुर

इन्हें श्रीप्रभु के इस प्रचार कार्य की सेवा के लिये अनेक धन्यवाद पूर्वक शुभाशीर्वाद है। आशा है कि, अन्यान्य भक्त वृन्द भी इनका अनुकरण कर श्री प्रभुके कृपा भाजन बनैंगे।

मूल्य—एक रुपया

प्राप्ति स्थान—
श्रीराधारमण मंदिर,
श्रीधामवृन्दावन।

मधुर-मन्तव्य

"रसो वै सः रसंह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति"

श्रीभगवान् स्वयं रसस्वरूप हैं एवं आनन्दमय हैं। जीव उनकी रसमयी उपासना के द्वारा ही विमल-आनन्द लाभ कर सकते हैं। उपासना विषयक रस, उपासक के भाव-भेदानुसार मुख्यतया पाँच प्रकार का है:—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर। इन में एक के अनन्तर दूसरे में आस्वादन अधिक होने के कारण मधुर-रस ही सब से श्रेष्ठ है। इस मधुर-रस की उपासना में शुद्ध-अनुराग ही प्रधान कारण है; अतएव इसे रागानुगा उपासना भी कहते हैं। शुद्ध अनुराग ही जीव का स्वरूपगत नित्य-सिद्ध स्वधर्म है। इसके द्वारा जो उपासना होती है उसकी कोई विधि अभी तक शास्त्र के रूप में लिपि-वद्ध नहीं हुई है और न हो ही सकती है। जब कभी श्रीभगवान् अपने अनुरागी भक्तों पर अनुग्रह कर अपनी मधुर-लीला का आदर्श प्रकाश करते हैं, रसिक भक्त तभी उनकी लीला-माधुरी का आस्वादन करते हैं। इस रसास्वादन प्रक्रिया का नाम ही रसमयी उपासना है।

श्रीराधाकृष्ण-मिलिततनु प्रेमावतार श्री श्रीभगवान् कृष्णचैतन्य महाप्रभु ने इस धराधाम पर अवतीर्ण होकर चौवीस वर्ष गृहस्थाश्रम में एवं बारह वर्ष सन्न्यासाश्रम में रहकर श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन द्वारा आचाण्डाल पर्यन्त जगत-गत अनन्त जीवों का उद्धार किया था। इसके अनन्तर बारह वर्ष पर्यन्त श्रीनीलाचल (श्रीजगन्नाथ पुरी) में एक एकान्त स्थान (गंभीरा मंदिर) में निरन्तर निवास कर स्वरूप दामोदर, रामानन्दराय आदि कतिपय अन्तरंग भक्तों के सहित अपनी निज माधुरी आस्वादन करने के मिस से रसिक भक्तों को ब्रजमाधुरी का आस्वादनकराया था।

श्रीमन्महाप्रभु की यह रसास्वादन लीला किस प्रकार से सम्पन्न हुई थी, उसी का वर्णन इस "नीलाचल में ब्रजमाधुरी" ग्रन्थ में अति सरस एवं मधुर रूप से वर्णित हुआ है। यह ग्रन्थ विज्ञ वैष्णव—प्रवर श्रीयुक्त रसिकमोहन विद्याभूषण महोदय के द्वारा वंग भाषा में लिखा गया है। सौभाग्य से मुझे जब इसके अवलोकन का सुअवसर प्राप्त हुआ था तभी मेरे मन में यह प्रबल लालसा हुई कि, यदि इसका हिन्दी में अनुवाद हो जाय तो, वंग भाषा से अनभिज्ञ हिन्दी-भाषी भक्तों को भी इस अप्राकृत मधुर-रस के आस्वादन का सुयोग प्राप्त हो जाय; किन्तु इसका अनुवाद करना मेरे समान स्वल्प शिक्षित व्यक्ति के लिये सहज नहीं था। इसके गद्य अंश में तो इतनी अधिक कठिनता प्रतीत नहीं हुई, जितनी की पद्य अंश में कठिनता जान पड़ी इसका कारण यह है कि, इसमें जो पद्य हैं उनमें श्रीलीलाशुक विल्वमंगल तथा श्रीजयदेव विरचित संस्कृत पद्यों के अतिरिक्त श्रीचण्डीदास एवं श्रीविद्यापति द्वारा प्राचीन वंगला एवं तिरहुती भाषा में रचित पद्य ही अधिक हैं; जिनके बहुत से शब्दों का अर्थ या भाव ग्रहण करना ही मेरे लिये कठिन था। इस पर भी मन ने नहीं माना; उसने कहा-तुमे इससे साहित्यिक संसार में कोई ख्याति लाभ तो करना ही नहीं है—तुझे तो यह कार्य प्रभु की सेवा समझ कर आत्म-सन्तोष के लिये करना है; तब फिर क्यों डरता है? बुद्धि ने भी मन की इस बात का अनुमोदन किया। मैं प्रसन्न हो श्रीप्रभु का नाम लेकर इस कार्य में प्रवृत्त हो गया। इसके अतिरिक्त एक दूसरी कठिनाई मेरे सन्मुख और आगई—जिसे मैं यहां प्रकाश नहीं करना चाहता था, किन्तु उसे भी श्रीप्रभु की मधुर-लीला की महिमा ही जानकर निःसंकोच होकर प्रकाशित करता हूँ—वह यह थी कि, मैं जिस समय अनुवाद लिखने बैठता था उस समय हृदय भाव से गद्गद् हो जाता था एवं नेत्र अश्रुजल से परिपूर्ण हो जाते थे -किसी प्रकार से दो चार पंक्तियां लिखकर ही कार्य बंद कर देना पड़ता था। अस्तु, किसी प्रकार से यह कार्य प्रभु कृपा से प्रायः

दो वर्ष में समाप्त हो गया। इतना होने पर भी, इसे प्रकाशित करने का साहस नहीं हुआ। यही कारण है कि, यह सात आठ वर्ष से लिपिवद्ध होकर अबतक यों ही विराजमान रहा। हां, समय-समय पर कुछ भावुक भक्तों के साथ इस ग्रन्थ की आलोचना अवश्य होती रही।

इस ग्रन्थरत्न के मूल लेखक श्रीयुक्त विद्याभूषण महोदय पिछले दिनों जब श्रीधाम की यात्रा करने आये थे तब उन्होंने इस अनुवाद को श्रवणकर विशेष प्रसन्नता प्रकट की और इसके प्रकाशन के लिये अनुरोध करते हुये कहा कि—हम इसके लिये कुछ आर्थिक सहायता भी करेंगे—और इससे जो आर्थिक लाभ होगा, वह तुम्हारे परिश्रम का पुरस्कार स्वरूप होगा। मैंने इसके उत्तर में निवेदन किया कि, मेरा यह प्रयास स्वार्थ के लिये न हो; यही आशीर्वाद कीजिये। प्रथम तो इसके प्रकाशन की मेरी सामर्थ ही नहीं है; यदि श्रीप्रभु की इच्छा से यह प्रकाशित भी हो और उससे कुछ लाभ हो तो, वह अर्थ परमार्थ प्रचार में ही व्यय हो, यही एकान्त बासना है। इनके अतिरिक्त अन्यान्य जिन भक्तों को इसके श्रवण का सुयोग हुआ था उनमें से भी कुछ ने इसे शीघ्र प्रकाशित करने के लिये विशेष अनुरोध किया।

कृपालु भक्तों के इस अनुरोध को ही श्रीप्रभु की प्रेरणा जानकर इसके प्रकाशन का आयोजन किया गया—जिसके-फल स्वरूप में यह ग्रन्थ मुद्रित होकर भक्त समुदाय के सन्मुख उपस्थित है। आशा है कि, रसिक भक्तवृन्द इसका रसास्वादन कर मुझे कृतार्थ करेंगे और ऐसा आशीर्वाद करेंगे कि, मैं भविष्य में भी उनकी इसी प्रकार सेवा करता रहूँ।

श्रीराधारमण मंदिर
श्रीधाम वृन्दावन
श्रीपंचमी १९९४

भक्त-पदानुरक्त—

बालकृष्ण

विषय-सूची

विषय—	पृष्ठ
१—लीला-अनुभव	१
२—लीला-कथा	४
३—पूर्वराग	११
४—रूपानुराग	५७
५—अभिसार	८३
६—उत्कण्ठा	१०७
७—मान	१११
८—कलहान्तरिता	१२६
९—आक्षेपानुराग	१३८
१०—ब्रजबालाओं की कृष्णोपासना ···	१४८
११—श्री श्रीमहारास	१५७
१२—माथुर-विरह	१६५
१३—मधुर-मिलन	१७६
१४—आत्म-निवेदन	१७८
श्री श्रीचैतन्य शिक्षाष्टक	१८४

संशोधन

मनुष्य की कृति में भूल होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि, इस पुस्तक में भी अनेक अशुद्धियाँ छप गई हैं। उनमें कुछ मात्राओं की न्यूनाधिकता एवं श-ष-स तथा ब-व आदि अक्षरों के भेद की अशुद्धियाँ हो गई हैं। विज्ञ पाठक इन्हें संशोधन कर पढ़ने की कृपा करें और इस परिश्रम के लिये क्षमा करें।

ॐ नमोभगवते श्रीगौरचन्द्राय: ।

नीलाचल में ब्रजमाधुरी ।

राधाकृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनीशक्तिरस्मा—
देकात्मानावपि भुविपुरा देहभेदं गतौ तौ ।
चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्द्वयं चैक्यमाप्तं
राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम् ॥

लीला-अनुभव

श्रीभगवान् की लीलामाधुरी परम आनन्दमयी है। उनकी कृपा के बिना लीला का अनुभव करना सर्वथा असम्भव है। योगी-गण ध्यान करते हैं, किन्तु सभी ध्यानों में ध्येय-वस्तु का यथार्थ रूप प्रकाशित नहीं होता। अपने मन की अलीक कल्पना के द्वारा जो एक कल्पित वस्तु का संगठन किया जाता है, उससे प्राणों की परितृप्ति नहीं होती। इस प्रकार का ध्यान करना केवल विडंवना मात्र है। अनुभव शून्य उपासना असार और निष्फल है। हम जिस अनुभव की बात कह रहे हैं, उसी का दूसरा नाम साक्षात् दर्शन है। इस प्रकार के अनुभव के बिना प्राणों की पिपासा परितृप्त नहीं होती।

दयामय श्रीभगवान् की सभी लीलायें नित्य हैं। श्रीचैतन्य भागवत में लिखा है:—

"सोई लीला गौरहरि करत आजहू नित्य ।
भाग्यवान कोई पुरुष निरख होत कृत कृत्य ॥"

यह वास्तव में ऋषि वाक्य है, इस पर मेरा पूर्ण विश्वास है।

मेरे आत्माराम स्वयं इस उक्ति के सच्चे साक्षी हैं। मैं उन पर अविश्वास नहीं कर सकता। वे श्रीमहाप्रभु की गंभीरा लीला के नित्य सेवक हैं। वे कहते हैं कि, गंभीरा लीला नित्य सत्य और अति मधुर है। श्रीमहाप्रभु की कृपा से ही इस लीला का अनुभव होता है। यह अनुभव साक्षात्कार की तरह प्रत्यक्ष है, तथापि श्रीजगन्नाथ क्षेत्र में श्रीगंभीरा मंदिर की ब्रह्मरज में बैठ कर इसका अनुभव करना जितना सहज है, अन्यत्र उतना सहज नहीं है।

आत्माराम कहते हैं कि, अब मेरे निज के प्रत्यक्ष अनुभव की बात भी सुन लीजिये--मैं रात दिन गंभीरा मंदिर के आस पास ही घूमता फिरता हूँ। मुझे औरों की तरह भूख, प्यास नहीं सताती, और न मुझे अन्य किसी प्रकार की अभिलाषा ही है। रात्रि के समय जब श्रीभगवान् राधाकान्त देव की शयन हो जाती है तब श्रीमंदिर बिलकुल ही शब्द शून्य एवं शान्तिमय हो जाता है। मैं श्रीमंदिर के एक कौने में बैठ कर श्रीगौर नाम जपता रहता हूँ। मैं औरों की तरह ऊल टाल कर जप करना नहीं जानता। जिनके लिये मेरे प्राण रोते हैं, मैं विरहिणी स्त्री की तरह व्याकुल होकर उन्हें पुकारता हूँ। बिना पुकारे, रहना असम्भव भी है। इसी से पुकारता भी हूँ। उनके दर्शनों से पूर्व पुकारने में भी सुख है! शान्ति है! पुकारने के संग संग ही आशा का उदय होता है—मन में यही प्रतीत होता है, मानों वे यहाँ आ ही गये-

परत पात पर पात, मानों आवत हैं मम नाथ

चौंक कर आंखैं खोल कर देखा तो कहीं भी कुछ नहीं है। अब भी नहीं आये! कैसे निठुर हैं? इतने मधुर होकर ऐसे निठुर क्यों? मैं क्या उनसे कुछ चाहता हूँ? और कुछ भी नहीं चाहता। चाहता हूँ केवल एक बार उनका दर्शन करना। एक ओर खड़े होकर अपने लीलामय की लीला का दर्शन करूँगा, और कान लगाकर स्वरूप दामोदर का सुमधुर लीला गान श्रवण करूँगा। बस, इसी आशा से सब परित्याग कर उच्छिष्ट भोजी स्वान के समान तृषित नेत्रों से यहाँ पड़ा

पड़ा उनका नाम स्मरण करता रहता हूँ। वे कहाँ हैं? अब भी तो दिखाई नहीं देते। वे हैं यहीं, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ, किन्तु केवल प्रकाश की अपेक्षा है, इसीलिये फिर उनका नाम जपता हूँ, फिर व्याकुल होकर उनको पुकारता हूं-दयामय गौरांग सुन्दर! एक बार तो आओ, आओ मेरे प्राणनाथ, आओ मेरे प्रिय मधुर, आओ अनन्त रस माधुर्य की खान।

कितने आवेग, कितनी उत्कंठा से प्रतीक्षा करता हूँ आशपर आशा, सागर तरंगों की तरह हृदय में उठ कर वहीं की वहीं विलीन हो जाती हैं, किन्तु ये तरंगें हृदय में से हटतीं नहीं हैं। यथार्थ बात तो यह है कि, मैं उनको जितना निठुर समझता हूँ. वे उतने निठुर नहीं हैं। उनकी निठुरता भी एक लीला है, जिसका उद्देश केवल आवेग, अनुराग और उत्कण्ठा की वृद्धि करना ही है। परन्तु मन इस बात को नहीं मानता है, वह व्याकुल हो ही उठता है। किन्तु दयामय भगवान् भक्त के हृदय को कभी कष्ट नहीं होने देते हैं। जिस समय निराशा से नेत्रों के सामने अन्धकार दिखाई देने लगता है, उसी समय उनकी मन मोहिनी कनक छटा झलक उठती है। आहा, कैसी सुन्दर! कैसी मधुर! एवं कैसी आनन्दमयी है। जिस समय सहसा गंभीरा लीला का अद्भुत आविर्भाव होता है, उस समय मैं विस्मय और आनन्द में मग्न हो कर आत्म ज्ञान शून्य हो जाता हूँ।

क्या तुम इस महा लीला का वर्णन श्रवण करना चाहते हो? किन्तु यह सुनने सुनाने का विषय नहीं है, और न साधारण ज्ञान के द्वारा जानने का ही विषय है। यह चित्त की धारणा से बाहर की बात है। मनुष्य की भाषा इस लीला के वर्णन करने में पूर्णरूप से असमर्थ एवं अयोग्य है। जो केवल अनुभव की वस्तु है, उसके साथ भाषा का सम्बन्ध बहुत ही अल्प है। तो भी मैं तुमको उसके आभास मात्र समझाने की चेष्टा करूँगा। परन्तु साथ ही यह भी बहुत संभव है कि, तुम इस पर भी कुछ न समझ सको, क्योंकि भाषा का शब्द सुनना

और बात है एवं उसके अर्थ का अनुभव करना और बात है। जो मनुष्य यह नहीं जानता कि जल क्या पदार्थ है, या जिसने जल कभी देखा ही नहीं, वह जल शब्द को सुन कर उसका यथार्थ अनुभव नहीं कर सकता।

श्रीभगवान् की आनन्दमयी लीला का अनुभव करने के लिये सब से प्रथम उनकी कृपा प्राप्त करने की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि केवल भाषा ज्ञान के द्वारा उसका अनुभव होना नितान्त असम्भव है।

तुमको गंभीरा लीला के दर्शन से पहले साधन करना उचित है। अविष्टतामयी वासना के साथ जब भगवत् प्रसाद का संयोग होता है, तभी लीला का अनुभव होना सम्भव है। इसका प्रथम साधन है- व्याकुल प्राणों से प्रभु को पुकारना। इससे वांच्छाकल्पतरु श्रीप्रभु तुम्हारी मनोवांछाओं को पूर्ण करेंगे। तभी तुमको अनुभव प्राप्त होगा। मैं केवल तुम्हारी रुचि उत्पन्न करने के लिये, आग्रह वृद्धि के निमित्त एवं उस दिव्य अनुभव प्राप्त कराने के अभिप्राय से श्रीप्रभु की आनन्दमयी गंभीरा लीला का अति संक्षेप से तुम्हारे सन्मुख वर्णन करता हूँ।

लीला कथा

वैशाख का महीना है। रात्रि शेष होने से पूर्व उषःकाल ही में रामानन्दराय गंभीरा मंदिर के वहिर्द्वार पर आकर उपस्थित हैं। आते हीं द्वार के सन्मुख प्रणाम कर वहीं से देखा कि प्रभु नहीं हैं। चौंक कर गोविन्द गोविन्द कह कर पुकारने लगे। गोविन्ददास का भी कोई उत्तर नहीं मिला। वह भी वहां नहीं है, तब तो चिन्तित और विस्मित होकर मंदिर के भीतर प्रवेश कर देखा तो एक कोने में शंकर पंडित पड़े हुये सो रहे हैं। रामानन्द घबड़ा कर शंकर को पुकारने लगे। शंकर की प्रातःकालीन सुख निद्रा भंग हो गई रामराय ने कहा,

पंडित ! तुमको क्या निद्रा ही सब से अधिक प्रिय वस्तु है ? प्रभु कहाँ हैं ? हम तो तुम्हारे विश्वास पर निर्भर रहते हैं। प्रभात होने भी नहीं पाया कि प्रभु कहीं चले भी गये और गोविन्द भी नहीं हैं।

शंकर--हँस कर कहने लगे, राय महाशय ! कोई चिन्ता की बात नहीं है। प्रभु समुद्र स्नान करने गये हैं, और गोविन्द भी उनके साथ ही गये हैं। राय महाशय ! मैं क्या कहूँ मेरे दुर्भाग्य में निद्रा ही लिखी है, इस दुष्टा निद्रा का मरण भी तो नहीं होता। मन में तो सर्वदा यही विचार किया करता हूँ कि कभी सोऊँगा नहीं, समस्त रात्रि जागरण कर प्रभु की सेवा करता रहूँगा। परन्तु सब समय आंखों की पलकें खुली रखना बड़ा कठिन है, तो भी कल की रात्रि तो समस्त जागते ही व्यतीत हुइ।

रामराय—क्यों, क्या कल रात्रि को प्रभु को बिलकुल ही निद्रा नहीं आई ?

शङ्कर—कल आप लोग जिस समय यहां से गये थे, उस समय प्रायः डेढ़ प्रहर रात्रि व्यतीत हुइ थी। जब आप लोग चले गये, तब प्रभु मुझसे और गोविन्द से कहने लगे कि, तुम लोग व्यर्थ क्यों जागते हो ? तुम दोनों जाकर सो रहो। तुम लोग यह तो जानते ही हो कि मुझे निद्रा नहीं आती, क्योंकि ऐसी उदास दशा में क्या कोइ स्थिर रह सकता है ? तिसपर भी जब कि मैं रात्रि दिन उसे पुकारता रहता हूँ। यह कह कर ही प्रेम में व्याकुल हो कहने लगे. हे प्राणनाथ ! मैं तुम्हारे विना एक क्षण भी नहीं रह सकता हूँ। मेरे प्राण पल पल में तुम्हीं को चाहते हैं। हे नन्दकुल चन्द्रमा ! तुम कहां हो ? मेरे नयनों के अंजन, हृदय के रंजन, तुम कहां हो ? यह कह कर रोदन करने लगे।

ऐसी दशा में हम लोगों पर कितनी विपद थी, सो आप सहज ही में समझ सकते हैं। उस समय गोविन्द प्रभु के श्रीचरणों को पकड़ कर रोकर कहने लगे-दयामय ! अब शान्त हो जाइये, हम लोगों से

अब नहीं सहा जाता। आपको किस प्रकार से शान्त करें, यह हम लोग कुछ भी नहीं जानते। तब प्रभु गद्‌गद् स्वर से कहने लगे— गोविन्द! अब मैं क्या करूं, तुम मुझसे क्या करने के लिये कहते हो? तुम लोगों को दुख देने में क्या मुझको कुछ सुख मिलता है? मेरे संग से जो तुम लोगों को दुख मिलता है, क्या मैं उसे नहीं जानता हूँ? परन्तु मैं करूं भी क्या? मैं तो एक पागल हूँ। वह देखो, आकाश में चन्द्रमा का उदय हो रहा है। आकाश का नील वर्ण कैसा सुन्दर और स्वच्छ है। वसन्त की मन्द मन्द पवन कैसा आनन्द दे रही है। इस कुशुम कानन की सुखमय सुवास कैसा उल्लास कर रही है। हाय, ऐसे सुसमय में मेरे प्राणों के प्राण श्यामसुन्दर कहां हैं?

यह कहते कहते प्रभु उन्मत्त की तरह मंदिर से बाहर निकल पड़े। मैं और गोविन्द भी उनके साथ साथ थे—मन में शोचा-न मालूम आज क्या नई विपद आने वाली है। परन्तु प्रभु और कहीं न जाकर अपने इस पुष्पोद्यान ही में एक पत्थर पर बृक्ष के सहारे मस्तक झुका कर बैठ गये। और उन्मत्त की तरह इधर उधर देखने लगे। अनेक बृक्षों में नाना प्रकार के पुष्प खिल रहे थे। जाही, जुही, मधुमालती, चम्पा, चमेली आदि की सुगन्ध से चारों ओर आमोदित होरहा था। प्रभु के चन्द्रमुख को निरीक्षण करने से आकाश का चन्द बिलकुल ही मन्द प्रतीत होता था। सजल नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। उस समय व्याकुल होकर मन्द मन्द स्वर से यह गान करने लगे—

फूलन को सखि बाग लगायो, का सुख पायो मन में।
मधुपी भ्रमर भये मतवाले, विरह जलन मो तन में॥
विविध भांति के फूल खिले सखि, गंध सों नींद न आवै।
पुरख जात है ऐसी निरदई, दुख दैकै सुख पावै॥
फूलन की क्यों सेज सजाई, सोय न पाइ छिन मैं।
पीतम बिना शूल से लागत, दुख पावत निशि दिन मैं॥

प्रभु गान करते करते वाह्य ज्ञान शून्य होकर रोदन करने लगे और अपने मन में कहने लगे--ललिता मेरी यह क्या दशा हो गई, अब मैं क्या करूँ ? यह कहते कहते फिर से गान करने लगे:—

पीतम के हित सेज सजाइ, माल बनाई न्यारी।
पान लगाये दीप जाराये, कुञ्ज करी उजयारी॥
यह सब वृथा भयो अब सजनि, बिन नागर के आये।
कबलों आश करूँ उनकी मैं, उन काहू बिरमाये॥
सबै छांड आई बन माहीं, कबलों उनको ध्याऊँ।
देखत बाट गई निशि सारी, मन केतो समझाऊँ॥

गान के समाप्त होते ही प्रभु पत्थर पर गिर पड़े। गोविन्द घबड़ा कर शीघ्र ही उनके मस्तक की ओर जा बैठे। मैं भी मन में महा विपद की आशंका कर प्रभु को पकड़ कर बैठ गया। इस समय प्रभु को वाह्य ज्ञान बिलकुल ही नहीं रहा।

रामानन्द घबड़ा कर कहने लगे—हा, यह कैसी विपद है, अच्छा फिर क्या हुआ ?

शंकर ने कहा-इसके अनन्तर कोई उपाय न देखकर हम लोग "हा, कृष्ण दयामय ! हा, कृष्ण प्राणनाथ !" कह कर कृष्ण नाम कीर्तन करने लगे। इसी प्रकार तीन प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर, प्रभु में कुछ कुछ ज्ञान का संचार प्रतीत होने लगा। परन्तु अश्रुधारा इस समय भी नेत्रों से अविरत वह रही थी। गोविन्द कान के समीप उच्चैस्वर से कृष्णनाम कीर्तन कर कहने लगे-दयामय ! इस कंकरमय कठिन भूमि पर आप के श्रीअंग को पड़े हुए देख कर हम लोगों का हृदय फटा जाता है। कृपा कर अब शीघ्र उठिये।

प्रभु मृदुस्वर से कहने लगे-गोविन्द ! मैं अपने वश में नहीं हूँ। परन्तु मैं जो तुम लोगों के क्लेश का कारण हो रहा हूँ, इसका मुझे भी अपार दुःख है। कृष्ण ने मेरी यह क्या दशा करदी ?

यह कह कर प्रभु धीरे धीरे उठ खड़े हुए । हम लोगों ने बड़ी सावधानी से उनको लाकर श्रीमंदिर में शयन करादी. किन्तु उनको निद्रा नहीं हुई । कुछ काल के अनन्तर ही गोविन्द से कहने लगे--गोविन्द ! तुम अभी बैठे ही हो, जाओ थोड़ी देर सो रहो, मैं समुद्र स्नान करने जाता हूँ । गोविन्द यह कह कर कि, मैं भी आज अरुणोदय के समय ही समुद्र स्नान करूंगा, उन्हीं के पीछे पीछे चले गये। और मैं आलस्यी निद्रा के वशीभूत होकर यहीं पड़ा रहा । आप के आने के समय तक भी न उठ सका। प्रभु के श्रीचरणों में ही पड़ा रहता हूँ. और चरण सेवा करते करते यहीं सो जाता हूँ । मैं बड़ा अपराधी हूँ, आप मुझे क्षमा करेंगे ।

रामानन्द लज्जित होकर कहने लगे--पंडित ! तुमको जगाकर मैंने अच्छा कार्य नहीं किया। तुम समस्त रात्रि जागरण कर प्रभु की सेवा करते रहते हो। मेरे सौभाग्य में सेवा का सुख नहीं है। मैं बड़ा अधम हूँ, मैं नितान्त बहिरंग हूँ, तुम्ही प्रभु के परम प्रिय एवं अन्तरंग हो। इसी से तुमसे इतने जोर की बात कभी कभी कह देता हूँ।

इसी समय श्रीस्वरूप दामोदर भी वहां आकर उपस्थित हुए, और कहने लगे, राय महाशय ! आज आप यहां कैसे इतने प्रातःकाल आकर उपस्थित हैं ?

रामानन्द श्रीस्वरूप को भक्ति पूर्वक प्रणाम कर कहने लगे--कल रात्रि को श्रीप्रभु की आज्ञा से घर जाकर भी स्थिर नहीं रह सका, निरन्तर हृदय में उद्वेग होता रहा । अब प्रायः प्रभु का चित्त ऐसा अधीर हो जाता है कि न मालूम किस समय उनकी क्या दशा हो जाय, सो नहीं कहा जाता। शंकर पंडित से कल की रात्रि का जो वृत्तान्त सुना है, उससे ज्ञात होता है कि, इसी से रात्रि भर मेरे प्राण छटपटाते रहे। मैं घर में न ठहर सकने के कारण ही इतनी शीघ्र यहां आकर उपस्थित हुआ हूँ। यह कह कर रामानन्द ने श्रीस्वरूप दामोदर को सब वृत्तान्त विस्तार पूर्वक कह सुनाया।

श्रीस्वरूपदामोदर ने सब अच्छी तरह श्रवण किया, किन्तु किसी प्रकार का आश्चर्य प्रकाश न कर कहने लगे-अब इसी प्रकार हुआ करेगा। पहिले श्रीराधा प्रेम की महिमा यमुना तट की निकुंजों में एक प्रकार की देखी गई थी--इस बार नील सागर के तट पर उस माधुरी का घनसार आस्वादित होगा। महाप्रभु श्रीराधिका के ऋण से ऋणी हैं--दूसरे शब्दों में ये दाता शिरोमणी हैं। इस बीच में जो कुछ खराबी है वह हमारी और तुम्हारी है। जितनी दौड़ धूप, जितनी खेंचा तानी, जो कुछ है, वह सब हमारे और तुम्हारे लिये है। उनकी तो स्वयं जो इच्छा होगी वही करेंगे और हम लोग अपने मन का कोई भाव भी प्रकाश नहीं कर सकेंगे-बताओ तो, यह कैसी व्यवस्था है?

रामराय बाहर की ओर देख कर कहने लगे-अच्छा अब सब चुप हो जाइये, मालूम होता है प्रभु आरहे हैं।

हिम से स्नात श्वेतकुशुम के समान श्रीगौरचन्द्र ने गम्भीरा मन्दिर में प्रवेश किया। प्रभु के नेत्रों के कोये पद्मपुष्प की पंखड़ी के समान सामान्य रक्त वर्ण के हैं, नेत्र युगल अब भी अश्रुओं से परिपूर्ण हैं, मुक्तापंक्ति की भाँति अश्रुविन्दु अब भी प्रभु के गण्डस्थल को परिषिक्त कर रहे हैं।

गोविन्द ने प्रभु के पाद प्रक्षालन किये। प्रभु अवश भाव से पृथ्वी पर ही बैठ गये। वामकर पर कपोल धर कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से रोदन करने लगे।

स्वरूपदामोदर प्रभु के मन का भाव समझ कर अपने मन ही मन में गुन गुन स्वर से यह गान करने लगे :--

यमुना तट पै रूप श्याम को, लखो किशोरी नैं जबसों।
बैठ अकेली रोय रोय कै, ध्यावत ताहि सदा तबसों॥
राख कपोल वामकर ऊपर, बनी विरह की जोगन सी।
जलधारा बरसत नैनन सों, सघन घटा सामन घन सी॥

इतना गाकर ही स्वरूप मौन हो गये। रामराय कहने लगे— बाकी का कब के लिये रख छोड़ा है ? यह कह कर बाकी का गान रामराय स्वयं ही धीरे धीरे गाने लगे :—

ताहि समें ललिता आइ तहँ, देखन दशा किशोरी की।
देख दशा व्याकुल ह्वै पटसों, पोंछत आंखें भोरी की॥
गह कै अङ्क शङ्क ह्वै ललिता, बोलत मधुर मधुर बैना।
एसी दशा आज क्यों तेरी, कहै न कछु मोसौं भैना॥
सदां लखो मन मुदित तिहारो, हँस बतरावतहि सबसों।
आज भई क्यों व्याकुल ऐसी, सांचि कहै रोवत कबसों॥

गौरचन्द्र सजल नेत्रों से स्वरूप की ओर देख कर कहने लगे— स्वरूप ! इस समय मेरी विद्या बुद्धि जो कुछ है, वह सब तुम्हीलोग हो। मैं अब अपने आपे में नहीं हूँ। जितनी देर तुमलोगों से श्रीकृष्ण कथा श्रवण करता हूँ, उतना समय तो एक प्रकार से कट जाता है, इस के अनन्तर जो मेरी दशा होती है वह वर्णन से अतीत है। कल रात्रि के समय मेरे सङ्ग रह कर शङ्कर ने और गोविन्द ने इतना दुःख पाया कि जिसका कोइ अन्त नहीं।

पहिले भक्तगणों के सङ्ग हरिनाम कीर्तन करने से कितना आनन्द प्राप्त होता था, और तिर्थों में भ्रमण करने से कितना सुख प्राप्त होता था, सो सब अब बिलकुल ही नहीं है। अबतो शरीर एकबार ही अवश हो गया है, अब कहीं भी जाने आने की इच्छा नहीं होती. मनमें यही आता है कि कहीं एकान्त में बैठ कर केवल उस श्यामसुन्दर रूप की भावना करता रहूं। तुमने कल सन्ध्या के समय जो कविता पढ़ी थी वह कैसी मधुर थी :—

कहा भई अन्तर बिथा, राधा के मन मांहिं।
बैठी निरजन भवन में, कहत सुनत कछु नांहिं॥

ध्यावत निशदिन श्यामघन, भये नैन थिर जासु।
रंगे वसन जिम जोगिनी, असन नसन भो तासु॥

स्वरूप! यथार्थ बात तो यह है कि जिसकी व्यथा वही जानता है--श्रीराधिका के अन्तर की व्यथा श्रीराधिका ही जानती हैं--वे श्याम के विरह में एक क्षण भी स्थिर नहीं रह सकतीं—क्षण क्षण में कभी भीतर कभी बाहर आती जाती हैं। प्राणप्यारे के दर्शनों की लालसा से प्राणों में जब एक प्रकार का उच्चाटन होता है, तब यही विचार करती हैं कि, क्या मैं किसी प्रकार से घर के बन्धनों में रह सकती हूँ? लोग मुझे समझाबुझा कर घर में रखना चाहते हैं, किन्तु मेरे प्राण प्रियतम के लिये व्याकुल हो रहे हैं। घर मेरे लिये कारा—गारसा प्रतीत होता है। सर्वदा, केवल यही शोचती रहती हूँ कि, कहाँ जाने से उसे पा सकूंगी?

पीत वसन घनश्याम तन, निरख होत अज्ञान।
डार बांह गल सखिन के, रोवत निकसत प्रान॥

यह यातना जिसको होती है, क्या कभी वह स्थिर रह सकता है? वह श्यामसुन्दर रूप, वह मनोहर मूर्ति, वह मधुर मुरलीधारी—इसी प्रकार से प्राणों की वंचना करता है। प्रिय स्वरूप! तुमने अभी जो उस निठुर के नाम लिये हैं, उनको श्रवण करते ही मेरा मन व्याकुल हो उठा—हाय अब मैं क्या उपाय करूं? यह कह कर ही प्रभु हठात् स्तंभित, नीरव और विवश हो गये। स्वरूप प्रभु का भाव जान कर गान करने लगे:—

मोकूं सखि! श्याम नाम कौन नें सुनायो?
जबसों हों श्रवण किया, तबसों अकुलात हियो।
धीरज मन धरत नाहिं, सब बिध समुझायो॥

ना जानूं नाम मांहिं, एसी का मधुर ताई ।
छूटत मुख सों न रटन, जतन करि छुडायो ॥
रटत रटत जासु नाम, सब विध मैं भइ निकाम ।
कैसि करूँ कहां जाउँ, कोउ ना बतायो ॥
नाम को प्रभाव जासु, एसी दशा करत तासु ।
अंग परस करत कहा, जात ना जनायो ॥
देखत ही रूप इन्दु, उमड़त है प्रेम सिन्धु ।
नारि धर्म कैसे, कहो ? जय जो बचायो ॥
विसरन हों चहत ताहि, विसरो वह जात नाहि ।
एसो दृढ़ व्है के नाम, हिये में समायो ॥

प्रभु गद् गद् कंठ से कहने लगे—स्वरूप यह पद तो पहले भी कइ वार सुना था, किन्तु आज एसा प्रतीत होता है कि, इस प्रकार का मधुर गान तुम्हारे मुख से कभी नहीं सुना—स्वरूप ! श्याम नाम में क्या ऐसी ही शक्ति है ? यह कहते कहते प्रभु का कंठ रुक गया, शब्द बन्द हो गया, अश्रुधारा से वक्षस्थल भीग गया ।

रामनन्द प्रभु का भाव जानकर उनको पकड कर बैठ गये और देखने लगे कि, प्रभु के सुन्दर अधर युगल वायु-ताडित वंशपत्र की तरह कंपित हो रहे हैं—बीच बीच में दीर्घ निश्वास निक्षेप कर रहे हैं । स्वल्प समय में ही उनका वाह्यज्ञान नष्ट हो गया । और कुछ ही क्षण के अनन्तर उषःकाल की अरुण किरणों में जागरित विहंग-काकाली कि तरह प्रभु के श्रीमुख से एक सुधा संगीत की कलध्वनि मन्द मृदु स्वर में प्रकट हो उठीः—

सखीरी हों अबला अनजान ।
अंकितकर इक चित्र दिखायो, मोय विशाखा आन ॥

वयस किशोर रूप मनमोहन, मधुर मधुर मुसकान ।
युगल नैन की शीतल चितवन, पूरन रस की खान ॥
नाजानूं देखत ही वाके, कहा भयो भगवान ।
डाल दई मोय बिषम अनल में, बाढी विपद महान ॥

प्रभु फिर मौन हो गये—उनके समुज्वल नेत्र युगल अश्रुपूर्ण, किंचित्—विस्फारित एवं आनन्द व्यञ्जक हैं। स्वरूप और रामानन्द चकोर की भांति उनके मुखचन्द्र का दर्शन कर रहे हैं। प्रभु के मुख-मण्डल पर मानों आनन्द का समुद्र उमड़ रहा है।

कुछ कालके अनन्तर गीत सुधा का मृदु स्वर फिर से प्रस्फुटित हो उठा: -

जिनकू मैं अपनो समझत हो, सो सपने को भान।
वातन आय लखो छवि ज्योंहि, पैठो त्योंहि प्रान ॥
छाती फटत हटत नहिं मनसो, कहा करूं अब आन।

गद् गद् स्वर से गाये हुए गान के समाप्त होने से पूर्व ही प्रभु नेत्र निमीलन कर मौन हो गये ! स्वरूप और रामराय का हृदय उस मधुर झंकार की तरंगों से परिपूर्ण हो गया। स्वरूप ने उस सुमधुर गान की तान गाकर पद को पूर्ण कियाः—

सबही कहत श्याम नवरस नैं, ठगी कुमर वृषभान ॥

महाभाव में मग्न महाप्रभु की अन्तर्दशा के समय भक्तगण अत्यन्त मौनभाव से उनके सन्निकट रह कर समयोचित सेवा किया करते थे। स्वरूप प्रभु के श्रीचरणों को अपने अंक में धरकर पाद संवाहन करने लगे और गोविन्द धीरे धीरे व्यजन (पंखा) करने लगे। रामानन्द की गोद में मस्तक धरकर प्रभु एक प्रकार मूर्छित की भांति अचेत होकर पड़े हुए थे। बीच बीच में अधर युगल कंपित हो उठते थे। मस्तक पर मुक्ता पंक्ति की भांति स्वेद विन्दु शोभा पा रहे थे। कभी कभी एक एक वार बीच बीच में "हा कृष्ण, हा प्राणवल्लभ"

शब्द उच्चारण कर दीर्घ निश्वास लेते जाते थे। इस प्रकार प्राय दो प्रहर समय व्यतीत हो गया। तब गोविन्द व्याकुल होकर कहने लगे – राय महाशय! आप लोगों का संग छोडकर प्रभु एक पल भी नहीं रह सकते--परन्तु संग की यह दशा है।

गोविन्द की बात समाप्त होते ही स्वरूप दामोदर कहने लगे – कल रात्रि के समय तो हम लोग नहीं थे--तब फिर प्रभु की एसी दशा क्यों हुई? गोविन्द ने कहा- मैं यह सब कुछ नहीं जानता हूँ। यह देखो तो--मध्याह्न का समय हो गया--अब तक प्रभु की सेवा का कुछ भी समाधान नहीं हुआ। मैं न तो आप लोगों का कुछ गान ही समझता हूँ, और न कृष्ण कथा ही समझता हूँ। मैं समझता हूँ केवल प्रभु की सेवा करना। सेवा की सुविधा न मिलने से मुझे असह्य दुःख होता है। वे अपने भाव में विह्वल रह सकते हैं--परन्तु मैं चाहता हूँ केवल--उनके मन्दहासयुक्त मुखचन्द्र का दर्शन और निरन्तर सेवा करना। आप लोगों की कृष्ण कथा से और आप लोगों के गान से जब उनका श्रीमुख नयन जल से आर्द्र हो जाता है, तब उसे देखकर मुझे अत्यन्त क्लेश होता है। उस समय मेरी विद्या बुद्धि सभी नष्ट हो जाती है और मैं पागल सा हो जाता हूँ यह देखो! प्रभु किस प्रकार से पड़े हुए हैं--यह दुःख क्या कोई नेत्रों से देख सकता है?

स्वरूप समदुःख प्रकाश कर कहने लगे--गोविन्द! तुम यथार्थ कहते हो, ऐसी दशा देखकर किस को दुःख नहीं होता? यह तो तुम जानते ही हो कि प्रभु लीलामय हैं, रसमय हैं और दयामय हैं। लीलामय की यह लीला जीवोंके मंगल के निमित्त ही है। जीवों के हितके निमित्त प्रभु का अवतार है। इसी प्रकार श्रीभगवान् जीवों को अपने प्रेम का आभास प्रदान करते हैं। गोविन्द! भावनिधि श्रीगौरांग प्रभु का भाव अपार और अनन्त है। आगे अभी और भी बहुत कुछ देखोगे।

श्रीराधिका के प्रेम की महिमा को जीव कभी स्वयं तो जान ही नहीं सकता है। प्रभु स्वयं उसका आस्वादन कर प्रेमिक भक्तों को अपना कृपा प्रसाद प्रदान करेंगे। केवल यही नहीं—अपनी निजकी प्रेमानन्द माधुरी कैसी है अर्थात् श्रीकृष्ण के प्रेमानुभव में श्रीराधिका की सुख सुधा कितनी मधुर है इसका प्रभु स्वयं आश्वादन कर भक्तों को उसका किञ्चित् कण लेश प्रदान करेंगे--भावनिधि प्रेममय प्रभु की भावतरङ्गों का क्या कुछ अन्त है ? अभी से इस प्रकार घवड़ाने से कैसे काम चलेगा ?

गोविन्द विस्मित की भाँति स्वरूप की बात सुनकर कानों पर हाथ रख कर बैठ गये। गोविन्द के कानों को यह सब बातें अच्छी नहीं लगतीं। जीवों के लिये प्रभु को इतनी यातना सहन करनी पड़ेगी, इतना विरह क्लेश उठाना पड़ेगा, अनाहार और अनिद्रित रह कर जहाँ तहाँ भूमि पर धूलि में लोटते रहेंगे, मूर्छित होकर पड़े रहेंगे ; गोविन्द के प्राण यह सब नहीं सह सकेंगे। गोविन्द और कुछ नहीं जानते, जानते हैं केवल सेवा करना। और न कोइ उनका दूसरा उद्देश ही है। इसी लिये गोविन्द शोच-विचार कर कहने लगे-- स्वरूप महाशय ! मैं आपकी यह सब बातें कुछ भी नहीं समझता, आप कृपा करके मेरे प्रभु को शीघ्र जगा दीजिये। कल रात्रि को जल तक स्पर्श नहीं किया और आज भी दुपहर हो गया- अबतक थोड़ासा जलपान भी नहीं करा सका। यदि आपलोग न होते तो इस समय ऐसी दशा न होती।

स्वरूप गोविन्द की सरल बातों से विचलित होकर कातर स्वर से फिर से गान करने लगे :—

देखे श्याम आज या मग में, बसीं नैन छवि भोरी सी।
आँचर ओट करन नहिं पाई, लखत रही बन बौरीसी॥

तुमहुं देख रहों सब सजनी, कहा दोष मैंनें कीनों।
परतहि दृष्टि अचानक बानैं, बरजोरी मन हर लीनों॥
अब तुम देहु बताय दयाकर, कहां रहत वह नटनागर।
दूनी दूर होय तोहू मैं, देखुंगी निश्चै जाकर॥
जीवन जोवन और चातुरी, बिन पीतम के वृथा सभी।
मदनबान सों बिकल होय मैं, काहू विध जीरही अभी॥
बढत एक पग प्रेमपन्थ में, लखी मोय सब नर नारी।
लाजहु गई रसातल मांहिं, होयो कठिन भयो भारी॥
मागत नैन अनेक इन्द्र सौं, वैनतेय सों पंख दोउ।
निरखूँ श्याम, मनो-रथ चढ कै, यदपि लाख बरजै कोउ॥

स्वरूप के पहले गान से महाप्रभु भावावेश में मूर्छित हो गये थे, इस गान से पुनः धीरे धीरे चेतना होने लगी। पूर्ण चेतना प्राप्त होते ही प्रभु स्वरूप के मुख की ओर देखकर, कुछ मन्द मन्द हँस कर कहने लगे—तुम जब गान करते हो, तब मुझे यही प्रतीत होता है, मानों साक्षात् मूर्तिमती व्रजलीला ही है। जितना श्रवण करता हूँ उतनी ही अधिक सुनने की लालसा और बढ़ती है। किसी प्रकार से कानों की पिपासा नहीं मिटती।

गोविन्ददास ने नेत्रों के इङ्गित से स्वरूप को सचेत कर दिया कि, जिसमें अब वे और कोई गान न गावें। अतएव प्रभु के आदेश करने पर भी, उस समय स्वरूप ने उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया।

रामानन्द कहने लगे—गोविन्द! जबतक प्रभु का प्रसाद प्राप्त न होगा, तबतक हमलोग यहाँ से नहीं उठेंगे। गोविन्द ने पहले ही से प्रभु की सेवा का सब प्रबन्ध ठीक कर रखा था। प्रभुने प्रिय पार्षदों के सहित श्रीकृष्ण संकीर्तन कर भगवान् का प्रसादान्न भोजन किया।

सब के अन्त में गोविन्द प्रभु का शेष प्रसाद पाकर परम आनन्दित हुये। भोजन के अनन्तर रामानन्द ने प्रभु से प्रार्थना की--दयामय! अब आप किञ्चित् विश्राम कीजिये, श्रीमुख कैसा क्लान्त हो रहा है।

प्रभु कहने लगे- मेरे विश्राम का भार तो तुमलोगों पर ही है। तुमलोगों का परिश्रम ही मेरा विश्राम है। जबतक तुमलोग मुझे श्रीकृष्ण कथा सुनाते रहते हो, तभी तक मुझे आराम विश्राम सब कुछ है। इसके अतिरिक्त किञ्चित् भी शान्ति नहीं मिलती।

रामानन्द कहने लगे--प्रभो! आपकी लीला का रहस्य आप ही जानैं। हमलोग तो कुछ भी नहीं समझते।

प्रभु ने कहा- रामराय! श्रीकृष्णकर्णामृत ग्रन्थ के सुधारस का आस्वादन तो तुमने कीया ही है। तुम्हारे मुख से उसके श्रवण करने की बड़ी प्रवल लालसा है। उसमें से आज कुछ कृष्णकथा श्रवण करा कर मुझे विश्राम दो।

रामानन्द ने कहा--आपकी कृपा से यह ग्रन्थ भली प्रकार से इस दास के दृष्टिगोचर हुआ है। श्रीकृष्णमाधुर्य की जैसी सुधानिधि इस ग्रन्थ में है, वैसी अन्य किसी ग्रन्थ में प्रतीत नहीं होती। यह सब आप ही का अनुग्रह है। इस ग्रन्थकार ने मानों मदन-मनोहर श्रीश्यामसुन्दर के लीला--माधुर्य-सिन्धु में मग्न हो कर माधुर्य--रत्नों का इस ग्रन्थ में संग्रह किया है। ऐसा मधुरोज्वल ग्रन्थ और कोई कभी देखने का सौभाग्य नहीं हुआ।

प्रभुने कहा—ग्रन्थकार लीला शुक श्रीविल्वमङ्गल मधुरारति के अधिकारी थे, मधुरा रति के अनुराग में मग्न होकर, उन्हों ने श्रीभगवान् की जिन लीलाओं का अनुभव किया था, श्रीकृष्ण की कृपा से उन्हीं का इस ग्रन्थ में वर्णन किया है। तुम्हारे समान प्रेमिक भक्त ही इस ग्रन्थ के आस्वादन करने के अधिकारी हैं। मैं आज तुम्हारे मुख से ही इस का मर्म श्रवण कर; अपने को कृतार्थ करना चाहता हूँ। अब विलम्ब मुझ से नहीं सह्य होता।

रामानन्द ने कहा प्राणेश्वर ! आप हृदय में स्थित हो कर जो कुछ कहलामेंगे वही मैं कहूँगा। आप ही वक्ता हैं और आप ही श्रोता। आप के अतिरिक्त मुझ पर मेरा निज का कुछ भी नहीं है।

यह कह कर ही रामानन्द श्रीप्रभु के चरणकमलों की ओर दृष्टि कर कुछक्षण के लिये ध्यानस्थ से हो गये और उनके नेत्रों में अश्रुबिन्दु दिखाई देने लगे। अन्त में गद्-गद् कण्ठ होकर अति मधुर स्वर से श्रीकृष्णकर्णामृत का यह श्लोक उच्चारण करने लगे :—

कमनीयकिशोरमूर्तेः कलवेणुक्कणितादृताननेन्दोः ।
ममवाचिविजृम्भतांमुरारेः विधुंरिम्नःकणिकापिकापिकापि ॥

प्रभु प्रसन्न होकर कहने लगे—मैंने भी मन में यही विचार किया था कि, तुम मुझे प्रथम यही श्लोक श्रवण कराओगे। प्रेममय श्रीभगवान् की मधुर लीला के वर्णन में प्रवृत्त होकर लीलाशुक ने जो अभिलाषामयी प्रार्थना की है वह कैसी परम सुन्दर है—वे कहते हैं—मुरारी के माधुर्य की एक कणिका भी किसी प्रकार मेरे मुख से प्रकाशित हो।

प्रेमिक भक्त के हृदय में मधुमय-माधव के माधुर्यसिन्धु की स्फूर्ति कैसी सुन्दर और विशाल होती है ? यह एकवार विचार करके देखो ! लोग जिनको मुरारी कहते हैं, लीलाशुक, श्रीराधिका के भाव का आभास पाकर उन्हीं को साक्षात् माधुर्य कहकर निर्देश करते हैं। उनके नेत्रों के सन्मुख मानों एक अगाध-अनन्त-माधुर्य-सिन्धु लीला-तरङ्ग रङ्ग में विराजमान है और वे विस्मित एवं स्तम्भित होकर उस माधुर्य लीला-सुधा का दर्शन कर रहे हैं, और कह रहे हैं—हे अनन्त-विशाल-माधुर्य-सिन्धो ! यदि मेरी इस क्षुद्र रसना में आपकी लीला-माधुरी का एक कण भी प्रकाशित हो जायगा तो मैं अपने आपको परम कृतार्थ ज्ञान करूंगा। आपकी माधुर्य का एक कण मात्र भी समस्त त्रिभुवन को माधुर्य-रस में मग्न कर सकता है।

हे महामाधुर्यसिन्धो ! लोग आपको मुरारी नाम से पुकारते हैं, सो आप यथार्थ ही मुरारी हैं--किन्तु मुरदैत्य को मर्दन करने के कारण मैं आपको मुरारी नहीं कहता, क्यों कि दैत्य निधन करना तो आपकी विष्णु शक्ति का कार्य है। आप मुरा के अरि अर्थात् कुत्सा के शत्रु हैं। आप में किसी प्रकार की भी कुत्सा नहीं है। आप समस्त कुत्साओं से रहित हैं। हे चिरसुन्दर! आप सर्व सुन्दर हैं--परम सुन्दर हैं। आप मधुर हैं--चिरमधुर हैं। आप "कमनीय किशोर मुग्ध मूर्ति हैं"।

रामराय ! तुमने समझा तो ? यह काव्य कल्पना की भाषा नहीं है--यह साक्षात् दर्शन की भाषा है- जिस रूप की भावना मेरे हृदय को व्याकुल किये रहती है--यह उसी रूप की देखी हुइ मधुरोज्वल सुन्दर मनोहर बात है। यह कहते कहते प्रभु सहसा मौन हो गये, और उन्नत नेत्रों से ऊपर की ओर देखने लगे। इस समय की प्रभु की दृष्टि अलौकिक दृष्टि थी--उनके नेत्रों के सन्मुख मानों विशाल लीलामाधुर्य का सुधासिन्धु भरा हुआ है, और वे अनिमिष नेत्रों से सतृष्ण होकर उस सुधा सलिल का पान कर विह्वल हो रहे हैं। प्रभु की विवशता देख कर, स्वरूप इस विचार से कि, कहीं वे गिर न जाँय, उनके पीछे की ओर जा वैठे। स्वरूपने धीरे धीरे प्रभु के मस्तक को अपने कन्धे पर रख लिया, तब भी उनकी दृष्टि और भाव में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ।

कुछ क्षण के अनन्तर प्रभु के नेत्रों में अश्रुविन्दु दिखाई देने लगे--वे फूट फूट कर रुदन करने लगे--उनको पुनः बाह्य ज्ञान हो गया। रामानन्द से कहने लगे--मैं एक पागल हूँ--कुछ कहना चाहता हूँ, कुछ कहता हूँ--कुछ करना चाहता हूँ, कुछ करता हूँ- कुछ भी ठीक नहीं है। क्या कहा, क्या नहीं कहा - कहते कहते सब विस्मरण हो गया। हाँ, हाँ, उसी मुखचन्द्र की बात कहता था, उस मुरलीधर की बात कहता था--"कलवेणुकणितादृत" मुखशशि की बात बिना

सुने नहीं समझोगे वह कलवेणुक्वणित कैसा मधुर है--सो बिना देखे भी नहीं समझोगे--बस कलवेणुक्वणितसुधाशिक्त श्रीमुख का कैसा कमनीय माधुर्य है। रामराय! तुम निश्चय जानो, इस माधुरी का आस्वादन---लीलाशुक को प्रत्यक्ष ही प्राप्त हुआ है।

लीलाशुक मधुर रति के साधक हैं। श्रीभगवान् के ऐश्वर्य भाव को उनके हृदय में स्थान प्राप्त नहीं हुआ। इसी लिये वे सर्वदा श्रीकृष्ण के केवल मधुर रूप के आनन्द रस में ही मग्न रहते थे। श्रीकृष्ण-माधुरी समुद्र की तरह असीम और अगाध है। उनका हृदय उस अनन्त माधुरी में निमग्न रहता है। उनका भाव विस्मित है। उनकी भाषा एकबार ही विह्वल है। इसी लिये उस माधुर्यमय भुवनमोहन श्यामसुन्दर के रूप का वर्णन अपने प्रियजनों को श्रवण कराने के अभिप्राय से ही व्याकुल होकर कहते हैं—उस कमनीय किशोर मूर्ति के कलवेणुक्वणित पूर्ण श्रीमुखचन्द्र का वर्णन मैं किस प्रकार से करूँ, क्यों कि मैं मुरारी की उस मोहन माधुरी के वर्णन करने की वह भाषा नहीं जानता हूँ जिसके द्वारा माधुर्य-सागर मुरारी के अनन्त माधुर्य की एक कणिका भी मेरी वाणी से प्रकाशित हो।

रामानन्द—श्रीकृष्णकर्णामृत ग्रन्थ वास्तव में अमृत की खान है। साक्षात् दर्शन के बिना इस प्रकार का वर्णन करना अत्यन्त कठिन कार्य है। किस श्लोक को पहले पढ़ें, किसको पीछे। किसको छोड़ दें, किसका आस्वादन करें, इस बात का निर्णय मैं नहीं कर सकता। अमर कवि श्रीबिल्वमङ्गल विरचित श्रीकृष्णकर्णामृत ग्रन्थ संस्कृत साहित्य-भण्डार का एक अलौकिक रत्न है। जिस रस से प्रेमिक भक्तों के प्राण शीतल होते हैं, जिसकी आध्यात्मिकता से चित्त परिपुष्ट होता है, जो नित्यानन्दधाम में सर्वदा सञ्चारित एवं प्रवाहित होकर प्रेममय श्रीकृष्ण को व्रजसुन्दरियों के सन्मुख नित्य नवीन रूप से प्रकाशित करता है, उसी विशुद्ध माधुर्य रस से यह काव्य परिपूर्ण है। इसका भाव जितना उच्च है उतना ही व्रजरस सुधा

से पूर्ण हैं। इसकी भाषा भी उसी प्रकार लालित्यमयी है। इस काव्य के पाठ करने से अन्य विषयानुराग दूर होकर चित्त एक अनिर्वचनीय अति सुन्दर माधुर्यमय एवं नित्य आकर्षक गुणयुक्त श्रीस्यामसुन्दर की ओर आकर्षित होता है।

महाप्रभु—तुम्हारी बात श्रवण कर संध्या कालीन ताराओं की तरह कर्णामृत के अनेक श्लोक मेरे हृदय आकाश में प्रकाशित हो उठे। और एक श्लोक श्रवण करोः--

वर्होत्तंस-विलास-कुन्तलभरं माधुर्यमग्नाननम्,
प्रोन्मीलन्नवयौवनं प्रविलसद्वेणुप्रणादामृतम्।
आपीनस्तनकुड्मलाभिरभितो गोपीभिराराधितम्,
ज्योतिश्चेतसि नश्चकास्तु जगतोमेकाभि रामाद्भुतम्॥

लीला-शुक कहते हैं:—"जिनका मस्तक शिखिपुच्छ के सहित सुन्दर सुचिक्कण कुन्तलदाम से शोभायमान है, जिनका श्रीमुख अनन्त माधुर्य्य का आकार है-मानो संसार का समस्त माधुर्य जिनके श्रीमुख में निमग्न है, अथवा कुंडलमण्डित गण्ड-माधुर्य एवं मन्दस्मित युक्त अधर माधुर्य्य के प्रवाह में जिनका श्रीमुख मग्न है, जो समुदित नव-यौवन की श्री से समुज्वल हैं, जो भुवन मोहिनी वंशी धारण कर अमृतोपम सुमधुर स्वरालाप कर रहे हैं, जिनका गोपीगण अपने पीनस्तनपद्मों से पूजन करती हैं, उनकी अनन्त जगत् की आनन्द-दायिनी अद्भुत ज्योति हमारे हृदयों में पूर्ण रूप से प्रकाशित हो।"

इससे प्रतीत होता है कि, श्रीराधिका की एवं गोपियों की एकान्त लीला की उत्कण्ठा वर्णन करने के निमित्त ही लीलाशुक की यह स्फूर्ति हुई है। वाह्यज्ञान शून्य होकर, अन्तरदशा में प्रवेश कर, उनका यह विचार हुआ, मानों वे अपनी सप्राणा सखियों के सहित निकुञ्जलीला में प्रविष्ट हैं। श्रीकृष्ण की रूप माधुरी की एवं आभूषण आदि की स्फूर्ति भी उनके हृदय में जाग उठी। गोपीयों के लावण्य-

भूषणों से भूषित उस निर्विशेष ज्योति की स्फूर्ति से उनके हृदय में मानों आनन्द की तरंगें उठने लगीं। इसी से वे समप्राणा गोपीयों से लालसा पूर्वक कहते हैं:—

"**ज्योतिश्चेतसिनश्चकास्तु**" सखिगण! यह ज्योति हमारे चित्तों में प्रकाशित हो। यह ज्योति मन और नेत्रों को परम आनन्द देने वाली है—आहा कैसी अद्भुत, कैसी सुन्दर, कैसी मधुरोज्वल ज्योति है। यह विचार करते करते जब स्फूर्ति और भी अधिक प्रकाशित हो उठी. तब उनको यह दर्शन हुआ:—

"**माधुर्य्यमग्नाननम्**" श्रीकृष्ण का मुखमण्डल माधुर्य में मग्न है—अर्थात् कुण्डल-मण्डित गण्डस्थल से एवं मन्दस्मित-युत अधर पल्लवों से माधुर्य का प्रवाह बह रहा है। यह विचार करते ही पूर्ण रूप से स्फूर्ति उदय हो उठी। उस समय वे और भी स्पष्ट दर्शन करने लगे:—

"**प्रोन्मीलन्नवयौवनम्**" यह ज्योति:पुंज मानों नव यौवन की लावण्यराशि से परिपूर्ण है। इस अवस्था में और भी स्पष्ट दर्शन होने लगा:—

"**बर्होत्तंस-विलास-कुन्तलभरम्**" जिनके शिखिपुच्छ से सुशोभित सुन्दर सुचिक्कण केश गमन समय में आंदोलित होकर मानों माधुर्य विस्तार कर रहे हैं। उस समय और भी देखने लगे:—

"**प्रविलसद्वेणु-प्रणादामृतम्**" श्रीकृष्ण वेणु वादन कर रहे हैं। वेणु का स्वरालाप-विलास श्रीकृष्ण का एक महावैभव है। वंशीनाद का और एक वैभव है—"महा माधुर्य"। यह माधुर्य ही वास्तव में अमृत है, अर्थात् मृत संजीवनी सुधा है। श्रीकृष्ण की वंशी की ध्वनि से शुष्क वृक्षादि भी सजीव हो जाते हैं। माधुर्य मग्नानन, नवयौवन-लावण्य-भूषित, नवकिशोर ज्योतिर्मय सुधामधुर वंशीवदन श्यामसुन्दर

की लावण्य छटा से उच्छलित रूप माधुर्य का दर्शन करते करते लीला-शुक विल्वमंगल और भी अधिकतर, स्पष्ट रूप से दर्शन करने लगे।—

"आपीनस्तनकुड्मलाभिरभितो गोपीभिराराधितम्" गोपीगण आलिंगन कर अपने नवयौवन माधुर्य से जिनकी मधुर सेवा करती हैं। इस समय और भी देखने लगे:—

"जगतामेकाभिरामाद्भुतम्" जगत में ऐसा सौन्दर्य-माधुर्य कहीं भी परिलक्षित नहीं होता। इस प्रकार का नयनाभिराम, मन का विराम कराने वाला अन्य कोई पदार्थ नहीं है। यह अद्वितीय वस्तु है। अतएव यह परम-अद्भुत है।

रामानन्द ! देखा तुमने, कैसा सुन्दर प्रत्यक्ष है ? मधुरकवि अपनी इस कविता में भावुक भक्तों के ध्यान के लिये कैसा सुन्दर चित्र अंकित कर माधुर्य मूर्ति का मानों प्रत्यक्ष दर्शन करा गये हैं—यह कहते कहते महाप्रभु मौन हो गये--नयननिमीलन कर मानों माधुर्यसुधा का पान करने लगे। उनके कमल नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे।

रामराय निर्निमेष नेत्रों से महाप्रभु की रूपराशि में "माधुर्य मग्नानन" का पूर्ण विकाश देखकर स्वरूप से कहने लगे--स्वरूप महाशय ! यह तो आपने माधुर्य मग्नानन की व्याख्या श्रवण की, अब उसका प्रभु के श्रीमुख में प्रत्यक्ष दर्शन करो।

स्वरूप रामानन्द की बात का कोई उत्तर न देकर कोमल सुमधुर स्वर से गान करने लगेः--

बरसत नैन सुधा सम बारी, विकशित भाव कदंब।
स्वेद बिन्दु मकरन्द चुअत है, भक्त भ्रमर अवलंब॥
नटवर गौर किशोर रूपवर, देखत ही बनि आवै।
बरणन कर न सकै बाणी सों, केतउ चतुर कहावै॥

कनक कल्प तरु सम तनु शोभित, निरख होत उल्लास।
करी प्रकाश रास रस माधुरि, कर नीलाचल वास॥
सुभग पद्म सम अरुण चरणतल, भक्त भ्रमर गुंजार।
परिमल लोभी सुरनर धावत, अह निश वारंवार॥

गान समाप्त होते ही रामानन्द स्वरूप से कहने लगे--आप बड़े चतुर शिरोमणि हैं--इस समय जो कुछ करना हो सो करो, क्योंकि इस समय प्रभु वाह्यज्ञान रहित हैं। जब वे नेत्र उन्मीलन करेंगे तब मन की बात मुख से निकालना अत्यन्त कठिन होगा।

स्वरूप हँसकर कहने लगे--ठीक तो है--अच्छा जब तक प्रभु को वाह्यज्ञान न हो तब तक और भी एक पद जल्दी जल्दी से गान करलूं:—

उदय भये गौरचन्द्र, कनक कान्ति धारी।
तारा गण भक्त वृन्द, उदित भये संग संग,
सकल भुवन मुदित भयो छाई उजयारी॥
दीन-हीन-कुमुद-बन्धु, बाढत लखि प्रेम सिन्धु,
रैन दिन प्रकाश करत, हृदय तिमिर हारी।
सहज सुभग मधुर गात, आनंद उर नहिं समात,
झुकिझुकिझुकि गमन करत, गजसम गति चारी॥
कृष्ण नाम गाय गाय, नाचत भुज युग उठाय,
रुदन करत भूमि परत, वहत अश्रु वारी।
पुलकावलि स्वेद विन्दु, शोभित शुभ वदन इन्दु,
वरसावत प्रेमसुधा, नाम कर प्रचारी॥
जाकी महिमा अपार, ऊंच नीच नहिं विचार,
करत कृपा सवहि पै, भक्तन हित चारी।

रामराय हँसकर कहने लगे—महाशय ! आप इस प्रकार असम्भव को भी सम्भव कैर सकते हैं। आपने तो भविष्य कवि को वर्तमान् में लाकर उपस्थित कर दीया।

स्वरूप कहने लगे—वर्तमान भविष्यत् आदि मैं कुछ नहीं जानता—भगवान् की लीला सब नित्य हैं—लीला रचना के कवि भी नित्य हैं। अब यह कहिये कि, "माधुर्य मग्नानन" ठीक प्रदर्शित हुआ या नहीं ?

महाप्रभु चकित भाव से अवलोकन कर कहने लगे—रामराय ! अच्छा फिर क्या हुआ ? आहा ! बहुत ही सुन्दर, स्वरूप के मधुर कंठ के मृदुगान की झंकार स्वप्न की तरह अस्पष्ट रूप से सुनाई पड़ी थी। स्वरूप ! तुम ने कौनसा गान किया था ?

स्वरूप निस्संकोच होकर कहने लगे—प्रभो वही "माधुर्य मग्नानन" का गान था।

महाप्रभु ने कहा—अच्छा तो एक वार उसे फिर गाओ, सुनैं तो ! रामराय बीच में बाधा देकर कहने लगे—एक गान कितनी वार गाया जायगा ! इसे अब रहने दो। न हो तो प्रभु की प्रसन्नता के लिये और ही कोई अच्छा सा गान करो !

स्वरूप यह कह कर कि "अच्छा ठीक है" और एक गान करने लगे:—

श्याम छवि मधुर सुधा की खान।
अंखियां निरखि अमित सुख पावत, विछड मिलत जिम प्रान ॥
मन में आवत धाय मिलूं मैं, छांड सकल कुल कान।
पकर जो पाऊं नैनन राखूं, दऊं अन्त नहिं जान॥
जलद--श्याम-तनु रुचिर सुधाकर, उदित भयो व्र आन।
नैन चकोर सुधो हित व्याकुल, निमिष काल युग जान॥

महाप्रभु कहने लगे—यह पद भी बड़ा सुन्दर है—किन्तु इस में माधुर्यमग्नानन की बात कहां है ?

स्वरूप हँसकर कहने लगे—उसकी तुलना उसी में है— उसकी जोडी का दूसरा पद नहीं है। मैं गान द्वारा उसे नहीं समझा सकूंगा, परंतु मैं उसे प्रत्यक्ष दिखा सकता हूँ।

महाप्रभु—किस प्रकार दिखा सकते हो ? दिखाओ !

स्वरूप उठकर जल्दी से एक दर्पण लाकर प्रभु के हाथ में देकर कहने लगे—इस में देखिये ! माधुर्यमग्नानन दिखाई देगा।

महाप्रभु ने दांतों से जीभको दवाते हुए दर्पणको पृथ्वी पर फेंक दीया और कहने लगे—छिः छिः क्या संन्यासी को कहीं दर्पण दिखाया जाता है ?

स्वरूप निस्संकोच भाव से कहने लगे—मैंने संन्यासी को तो दर्पण नहीं दिखाया। क्यों रामराय ! क्या मैंने सन्न्यासी को दर्पण दिखाया है ?

रामानन्द ने कहा—मुझे तो यहां कोई सन्न्यासी दिखाई नहीं पड़ता।

महाप्रभु—क्या मैं सन्न्यासी नहीं हूँ ?

रामानन्द—आप निश्चय सन्न्यासी नहीं हैं।

महाप्रभु—तब मैं कौन हूँ ?

रामानन्द उच्च हास कर कहने लगे—भला, आप यह तो कहिये कि, कवतक और कितनी वार हम लोगों से छल करेंगे। चोर यदि मयमाल के पकड़ लिया जाय तब भी वह यह नहीं कहता कि, मैं चोर हूँ। कितने दिन हम लोगों से छिपकर रहेंगे ? जिस समय आप श्रीकृष्ण-कर्णामृत के "माधुर्यमग्नानन" पद की व्याख्या कर रहे थे, उस समय हम लोगों ने आपके श्रीमुख की ओर निरीक्षण कर, ठीक माधुर्यमग्नानन का दर्शन किया था।

महाप्रभु रामानन्द की बात काटकर कहने लगे-बस चुप रहो ! ऐसी बात मुख से कहना उचित नहीं है। यदि इस प्रकार की बातें कहा करोगे तो मैं यहां नहीं रहूँगा। एक तो मैं अपने दुख से आप ही दुखी रहता हूँ। इस पर तुम लोगों की इस प्रकार की बातें सुनकर और भी अधिक कष्ट होता है। तुम लोग मेरे परम हितैषी हो। तुम्हारे मुख से कृष्ण कथा श्रवणकर परमशान्ति प्राप्त होती है। रामराय ! कर्णामृत के श्लोक वास्तव में कर्णों के लिये सुधा स्वरूप हैं। जिस बात को मेरे प्राण चाहते हैं, वही इन पद्यों में विद्यमान है। एक श्लोक और भी तुम को सुनाता हूँ :--

मधुरतरस्मितामृत विमुग्धमुखाम्बुरुहम्,
मदशिखि-पिच्छ-लांछित मनोज्ञ कच प्रचयम्।
विषय-विषामिष ग्रसन गृध्ननि चेतसिमे,
विपुलविलोचनं कमपिधाम चकास्तु चिरम्॥

लीलाशुक श्रीराधाभाव से भावित होकर कहते हैं—सखिवृन्द ! कदाचित् तुम यह कहो कि, जब सन्ताप देना ही श्रीकृष्ण का कार्य है, तब उसके स्मरण करने से क्या लाभ है ? यह बात तो ठीक है, परन्तु मैं करूँ भी क्या, मेरा मन तो मेरे बश में नहीं है—मेरा चित्त विषय-बिष रूप आमिष ग्रास करने का अत्यन्त लोभी है। मैं श्रीकृष्ण को ही अपना विषय मानती हूँ। क्यों कि जो निज माधुर्य द्वारा मनो-भ्रमर को आकर्षण कर बन्धन करता है वही बिषय है*। संसार में श्रीकृष्ण के समान ऐसा कौनसा विषय है ? और श्रीकृष्ण के अति-रिक्त भी ऐसा कौनसा विषय है ? जो वास्तव में विषय रूप से ग्रहण किया जाय ? परन्तु इस "विषय" में विष और अमृतएकत्र सम्मि-लित हैं। क्यों कि यह जिस प्रकार एकओर विषके समान मादक है,

---

* विशेषेन सिनोति-स्वमाधुर्य-मधुनि मनोभृङ्गंवध्नातीति बिषयम्।

उसी प्रकार दूसरी ओर अमृत के समान आनन्ददायक है+। इस विषय-बिष-धाम माधुर्य का ऐसा आकर्षण है कि, इसकी ओर एक-वेर चित्त आकर्षित होते ही यह उसको आत्मसात् कर लेता है। किन्तु हाय. मेरा मन ऐसा विवश है कि, वह इस श्रीकृष्ण रूप विषय-बिषामृत की ओर निरन्तर आकृष्ट रहता है। पतङ्ग दीपशिखा पर गिर कर अपने प्राण देदेती है, परन्तु तो भी उसके सौन्दर्य का लोभ परित्याग नहीं कर सकती है। सखि ! इस ज्योतिर्मय देवता का मुख-मण्डल मन्दस्मित से समुज्वल हो रहा है, नेत्र युगल परम बिशाल हैं एवं मदमत्त शिखिपुच्छ से सुशोभित केशपाश अति मनोरम हैं। सखि ! मैं कृष्णरूप अनलशिखा में जलकर अपने प्राण देहूँगी, इसमें मुझे कुछ भी कष्ट नहीं है, किन्तु श्रीकृष्ण द्वारा आकृष्ट चित्त में सर्वदा वह श्यामसुन्दर ज्योति प्रकाशमान रहे, यही एकमात्र वासना है।

मेरी सर्वदा यही इच्छा रहती है कि, वह श्यामसुन्दर मेरे हृदय-मन्दिर में निरन्तर बिहार करते रहें। उनके रूप का वर्णन करते करते मेरी भाषा मौन होजाती है, तब मैं कुछभी नहीं कह सकती हूँ।

मुकुलायमाननयनाम्बुजंविभो,
मुरलीनिनादमकरन्दनिर्भरम् ।
मुकुरायमानमृदुगण्डमण्डलम्,
मुखपङ्कजं मनसि मे विजृम्भताम् ॥

+ श्रीकृष्णप्रेम में बिष और अमृत का एकत्र समावेश है—यह विदग्ध-माधव नाटक के द्वितीय। अङ्क के १८श, श्लोक में भी वर्णित है :—

पीडाभिर्नवकालकूट-कटुता, गर्वस्यनिर्वासिनो,
निःस्पन्देनमुदांसुधामधुरिमा हंकार संकोचनः।
प्रेमासुन्दरि नन्दनन्दनपरो, जागर्तियस्यान्तरे,
ज्ञायन्तेस्फुटमस्यवक्रमधुरास्तेनैवविक्रान्तयः ॥

सखि ! उस विभु का मुखपद्म मेरे मानस-सर में सर्वदा सुशोभित हो। उसको मैं बिभु क्यों कहती हूँ ? इस लिये कि वे माधुर्य, चातुर्य आदि सर्व सम्पदों से परिपूर्ण हैं जिनका श्रीमुखमण्डल मुझे पद्म की भाँति प्रतीत होता है। कदाचित् तुम यह प्रश्न करो कि, इस मुखपद्म में मकरन्द क्या है ? तो क्या इसमें मकरन्द नहीं है ? सुमधुर वंशीध्वनि ही इसका मकरन्द है। प्राणबल्लभ के कपोल युगल दर्पण के समान स्वच्छ एवं इन्द्रनीलमणि के समान सुन्दर हैं। नयन-कमल भावोद्गम एवं मदनमद के कारण किञ्चित्-विकशित अर्थात् मुकुलित हैं। सखि ! श्यामचन्द्र का मुखकमल निरन्तर मेरे हृदय-सरोवर में बिराजमान रहे। मनमोहन के मुखकमल का दर्शन कर कभी कभी तो मनमें यह भाव उत्पन्न होता है कि, उनके प्रफुल्ल मुखकमल के ऊपर अर्धविकशित नयनकमल ऐसे शोभायमान हैं, मानों एक प्रफुल्लित कमल के उपर दो ईषत् विकशित कमल कलिका शोभायमान हैं। आहा, कैसा बिचित्र दृश्य है। मुझे और भी अनुभव होता है—श्रीकृष्ण के मुख पद्म पर अनेक मुकुलित नयन पद्म शोभायमान हैं। उनके कपोल रूप दर्पण में ब्रजबालाओं के भावपूर्ण मुकुलायमान नयन-पद्म-समूह प्रतिविम्बित हो रहे हैं। ज्ञात होता है, ये मानों मुख कमल के साथ मित्रता करने के निमित्त ही उसके समीप गये हैं। इसके अतिरिक्त और भी प्रतीत होता है—किसी ब्रजसुन्दरी के नयन युगल श्रीकृष्ण के कपोल दर्पण में प्रतिफलित होकर मुखपद्म पर खंजन के समान शोभायमान हो रहे हैं।

"लीलाशुक ने दिव्य दृष्टि द्वारा श्रीवृन्दावन विहारी की ब्रजलीला विलासमयी श्रीमूर्ति का दर्शन कर जो आनन्द अनुभव किया था—इन सब श्लोकों में उसी का कुछ कुछ आभास प्रदान किया है। रामुराय ! इनका प्रत्येक पद ही मानों श्रीभगबान् के अनन्त माधुर्य से परिपूर्ण है।"

रामानन्द और स्वरूप दामोदर विस्मित भाव से प्रभु के मुख कमल की ओर दृष्टिपात कर कथा-सुधा का पान कर रहे थे—और देखते थे कि, प्रभु के मुख कमल से शतशत मकरंद फुहार आनन्दधार के रूप में प्रवाहित हो रहीं हैं।

प्रभु कहते कहते भाव के आवेश में मौन हो गये। उस समय प्रभु की बात समाप्त होते ही--स्वरूप ने प्रभु के मन का भाव जानकर उसी के अनुरूप गान आरम्भ कर दीया--

कहा कहूं छवि रूपमाधुरी, जो मैं आज विलोकी।
उपमा नाहिं मिलत वाकी कहुँ, ढूंढ फिरी तिरलोकी॥
शीश विराजत मोरमुकुट सखि ! भालहि चंदन चंदा।
मानों यह नव व्रजयुवतिन के, मनमोहन हित फंदा॥
नव नीरदसम श्याम वरन है, रसमय मूरत वांकी।
रतन जटित वहु भूषण भूषित, त्रिभुवन मोहन झांकी॥
भ्रकुटी कामकमान जान युग, नैन तीर अनियारे।
वेधत ही सब कछु कर डारत, प्राण होत नहिं न्यारे॥
सुंदर अधर वजावत वंशी, बात करत हँस हँस कैं।
निकर सकै को व्रज में ऐसो, वाके फंदन फस कै॥

स्वरूप ने वासंतिक कोकिल-काकालि के समान मधुर कंठ से मधुर तान गाकर गान समाप्त किया। गायक मौन, श्रोता सब मौन। सब के हृदय से रस का प्रवाह अश्रुधार के रूप में प्रवाहित होंने लगा।

पूर्वराग

वैशाख मास के शेष सप्ताह में एक दिन, संध्या का समय संनिकट है। भगवान् सूर्यदेव अस्ताचल के द्वारपर दण्डायमान हैं। उनकी रक्त किरणें नीलसागर की तरंगमालाओं पर पतित होकर दर्शकों की दृष्टि में चाकचिक्य उत्पन्न कर रही हैं। तीरस्थ सघन वृक्षावली के पत्रों को अपने रक्त-राग से रंजित कर क्रमशः सागर की उत्ताल तरंगों की आड में लुप्त होती जाती हैं। सागरतट की बनभूमि मृदुकंठ विहगगण की विविध मधुर तानों से मुखरित हो रही है। जन साधारण का समागम क्रमशः होता जा रहा है। ऐसे समय में महाप्रभु श्रीकृष्ण प्रेम से व्याकुल हो, सागर तटपर आकर अपने अतिप्रिय अश्वत्थ वृक्ष के नीचे विषण्ण भाव से बैठ गये।

नव-नव मृदुल सरस सुन्दर पत्रावली के विकाश से अश्वत्थवृक्ष में मानों श्रीकृष्ण प्रेम का नवानुराग उदय हो रहा है, वृक्ष के पीछे श्यामल वनभूमि और सन्मुख दिगन्तव्यापी स्थिर गंभीर नील जलधि शोभायमान् है। वृक्ष के नीचे हमारे कनककान्तिकलेवर सजलनयन प्रेमविह्वल नव संन्यासी श्रीगौरसुन्दर बिराजमान हैं। प्रभु वामकर पर कपोल धरकर अधोवदन होकर बैठे हैं नेत्रों से अविरत अश्रुधारा प्रवाहित होकर गंडस्थल को परिशिक्त कर रही है। संग में स्वरूप और रामानन्द हैं—दोनों ही मौन हैं।

महाप्रभु अपांग वीक्षण (तिरछी चितवन) द्वारा बीचबीच में सागर के नीलजल की ओर निरीक्षण करते जाते हैं। इससे उनके हृदय की व्यथा और भी अधिक बढ़ती जाती है। यह दशा उनके नेत्र और श्रीमुख के दर्शन से स्पष्ट प्रतीत होती है। बड़ी कठिनता से धैर्यधारण पूर्वक मानसिक भावों को दमनकर कहने लगे—

प्राणप्रिय रामानन्द ! मैं कहाँ से तो कहाँ आगया। इसलिये सन्न्यास ग्रहण किया कि, जिसमें निश्चिन्त होकर सुखसे कृष्णनाम

कीर्तन करता रहूँगा, सो निश्चिन्त होना तो दूर रहा, इसके विपरीत और भी अधिक चिन्ताओं से मैं रात्रिदिन दग्ध हो रहा हूँ। यह बात तुमलोगों के अतिरिक्त और कोई नहीं जान सकता। और तुमलोग भी सब समय मेरी सब व्यथाओं को नहीं जान सकते। कृष्ण ने मेरी यह क्या दशा की। संसार के तापों से शान्ति पाने के लिये मैंने गृह आदि सब छोड़ा, किन्तु ताप शान्ति नहीं हुआ, उलटा और भी अधिक बढ़ता जाता है।

कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, किस प्रकार से उन नयनों के अञ्जन, हृदय के रञ्जन यमुना विहारी के दर्शन प्राप्त होंगे? अभी कितने दिन यह दुख भोगना पड़ेगा? जबतक तुम्हारे मुख से श्रीकृष्णकथा श्रवण करता रहता हूँ तबतक का समय तो किसी प्रकार से कट जाता है। स्वरूप जब कृष्णलीला गान करते हैं, तब तो सन्तप्त प्राण अनेकक्षण उसमें मग्न रहते हैं—गान समाप्त हो जाता है—स्वरूप मौन हो जाते हैं—तो भी उसका मृदु स्वर कानों में गूँजता रहता है। गान की मधुर झङ्कार हृदय के एक एक पर्त्त में प्रवेश कर घूमती रहती है। मेरी यह जागृत अवस्था है, अथवा स्वप्नावस्था है, इसका निश्चय करना मेरे लिये अत्यन्त कठिन कार्य हो गया है। कुछ क्षण के अनन्तर तो यह भी जानना कठिन होगा कि, स्वरूप का गान अमृत है या विष, सुखकर है या भयङ्कर। गान की झङ्कार जैसे ही समाप्त होती है—वैसे ही फिर से शतवृश्चिक दंशन के सामान हृदय की वेदना बढ़ जाती है—प्राण घोरतर विषम रूप से हाहाकार करने लगते हैं। इस प्रकार से तुमलोग मुझे कितने दिन जीवित रख सकोगे? बताओ तो?

ब्रजरस के सुख का स्वप्न कैसा सुन्दर है, कैसा मधुर है; किन्तु हाय! जागरण में यातना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इच्छा तो सर्वदा यही रहती है कि आजीवन इसी रस में मग्न रहा आऊँ--इसी स्वप्न में मत्त बना रहूँ--परन्तु ऐसा नहीं होता—फिर

जाग उठता हूँ--उस समय सब शून्य ही शून्य दिखाई देता है--उस समय ऐसा मालूम होता है, मानों किसी अपरिचित और अवाञ्छित जगत में आकर छटपटा रहा हूँ। उस समय एक मात्र तुमलोगों का ही आश्रय होता है। तुम्हारे मुख से कृष्णकथा श्रवण कर पुनः उस सुख की स्मृति हृदय में जाग उठती है। और वह स्मृति उस समय अनुभव के समान गाढ़ता धारण करती है। उस समय अनुभव भी मानों साक्षात् दर्शन सुख पर्यन्त पहुँचा देता है। इस समय यह तो मेरी अवस्था है। रामराय ! क्या कृपा करके अब कुछ मुझे ब्रजबालाओं के पूर्वराग का वर्णन श्रवण कराओगे ?

रामानन्द कृताञ्जलि होकर कातर कण्ठ से कहने लगे—दयामय ! मैं एक अधम जीव हूँ—आपकी लीला का रहस्य क्या जानूँ ? आप चाहें तो एक काठकी पुतली के मुख से ब्रजरस तत्व का प्रकाश करा सकते हैं—आपके लिये कौनसी बात कठिन है ? आपका आदेश और शक्तिसञ्चार—एकही बात है। मेरे मुख से वर्णन करा कर स्वयं श्रवण करना. यही तो आपकी इच्छा है—अतएव हे इच्छामय ! अपनी इच्छा को आपही सफल कीजिये।

यह कह कर रामानन्द ने कुछक्षण प्रभु के चरणों की ओर दृष्टिपात कर नेत्र निमीलन कर लिये। उनके नेत्र-युगल से अविरत अश्रुधार बहकर वक्षस्थल को शिञ्चन करने लगी। महाप्रभु और स्वरूपदामोदर दोनों भावाविष्ट-रामानन्द के मुख की ओर निरीक्षण करने लगे। रामानन्द नेत्र निमीलन कर भावाविष्ट होकर मृदुल मधुर कण्ठ से गान करने लगे :—

मृदुतर-मारुत-वेल्लित पल्लव-वल्ली-वलित शिखण्डम् ।
तिलक-विडम्बित-मरकत-मणितल-विम्बित-शशधर-खण्डम् ॥
युवती-मनोहर-वेशम् ।
कलय कलानिधि मिव धरणी मनु, परिणत रूप विशेषम् ॥

खेला-दोलायित-मणिकुण्डल-रुचि-रुचिरानन-शोभम् ।
हेला-तरलित-मधुर-विलोचन-जनति-वधूजन शोभम् ॥

रायरामानन्द गान गाकर ही मौन हो गये। इस गान में श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी का वर्णन है। रूप से ही पूर्वराग की उत्पत्ति है। ब्रजबिहारी श्रीकृष्ण, श्रीवृन्दावन में जो अपनी रूपमाधुरी को प्रकाश करते हैं, उसी के आकर्षण से स्थावर जङ्गम सभी उनकी ओर आकर्षित होते हैं। उस रूप के आकर्षण से कोई भी उनसे दूर नहीं रह सकता। उनकी आह्लादिनी-शक्ति स्वरूपा ब्रजवालाओं का तो कहना ही क्या है। उनका प्रेममय चित्त तो स्वभाव से ही कृष्ण-रूप माधुरी की ओर आकृष्ट रहता है। इस रूप के आकर्षण से ही हृदय में पूर्वराग का उदय होता है। इसी लिये राय महाशय ने पूर्व-राग के वर्णन से पहिले श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन किया है। रामानन्द ने इस संस्कृत गान के भाव के अनुरूप एक भाषा का गान भी गाया :—

वाको सखि ! युवति मनोहर वेश ।
जाकी छवि निरखत बनआवै, कर न सकत निरदेश ॥
शिखीशिखा सह पुष्पदाम सों, शोभित सुन्दर केश ।
उदित भयौ ब्रजअवनी ऊपर, सुधा सहित राकेश ॥
चन्दन चन्द्र चन्द्रमुख ऊपर, लसत ललाट सुदेश ।
मनहुँ चन्द्र पै चन्द्र उदित ह्वै, शोभा करत अशेष ॥
करत कपोल लोलकुण्डल युत, कुलकी कान निशेष ।
जाके नयन वाण विंध हीयो, धरत न धीरज लेश ॥
भूली मैं सब सुधबुध तब सों, जब सों लखो ब्रजेश ।
गयो डुबाय रूप सागर में, कारो कुटिल बिशेष ॥

श्रीकृष्ण के भुवन मोहन रूप का दर्शन अथवा उसका वर्णन श्रवणकर उनकी प्राप्ति के लिये जो चित्त की प्रबल लालसा होती है उसी का नाम पूर्वराग है। जिस समय रामानन्द भाव के आवेश में निजकृत गीत का गान कर रहे थे, उस समय महाप्रभु तृषित की तरह उनके गीतामृत का पान कर रहे थे।

रामानन्द गान गाने के अनन्तर कुछ क्षण मौन रह कर कहने लगे—

पूर्वराग हृदय की मधुरोज्वल स्फूर्ति है—चित्त कानन में यह नव बसन्त के समागम के सम्मेत है। प्रेम का यही प्रथम प्रस्फुरण है। इसके प्रथम प्रवाह से देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि सभी नवमाधुर्य में जागरित हो उठती हैं। द्वितीय प्रवाह से प्राणों के प्रियतम देवता के निमित्त चित्त चंचल और अधीर हो उठता है। और तृतीय प्रवाह में प्रणयी का चित्त प्रणय के ध्यान में मग्न हो जाता है।

श्रीमती राधिका श्रीकृष्ण के दर्शन पाते ही कहने लगीं—

"कहाकहुँ छवि रूप माधुरी, जो मैं आज विलोकी।
उपमा नाहिं मिली बाकी कहुँ, ढूंढ फिरी तिरलोकी॥"

पूर्वराग की प्रथमावस्था प्राप्त होते ही चित्तवृत्ति में इसी प्रकार नव बसन्त की महामाधुर्य का विकाश होने लगता है, किन्तु इस के साथ साथ चित्त चंचल हो उठता है—प्राणप्रिय का प्रेममय चित्र हृदय पटल पर अंकित हो जाता है—और उसके दर्शनों के लिये प्राण व्याकुल हो उठते हैं। विशाखा, श्रीराधिका के नव प्रेम के पूर्वराग की अवस्था देखकर ही ललिता से कहने लगी—सखि ललिते! राधिका की दशा तो देख! श्यामसुन्दर के दर्शन के निमित्त इनका चित्त अत्यन्त अधीर हो रहा है—एकक्षण भी घर में स्थिर रहना अत्यन्त कठिन एवं असह्य प्रतीत होता है—कभी घर के भीतर जाती हैं, कभी

फिर बाहर आजाती हैं—उनका उद्भ्रान्त चंचल चित्त, प्राणप्यारे के दर्शनों को निरन्तर आकुल रहता है।

इसके द्वितीय चरण में ही—पूर्वराग प्रेम का ध्यान होने लगता है।

कहाभई अन्तर विथा, राधा के मन मांहिं।
बैठी निरजन भवन में, कहत सुनत कछु नाहिं॥
ध्यावत निशदिन श्यामघन, भये नैन थिर जासु।
रंगे वसन जिम जोगिनी, अशन नशन भो तासु॥

ललिता प्रणय प्रकोप प्रकाश कर विशाखा से कहने लगी—प्रिया विशाखे! तुही तौ इस विपद की जड है। तू यदि श्याम का नाम और उसके रूप का वर्णन न सुनाती तो आज प्यारी राधिका की यह दशा क्यों होती? यही नहीं—तैंनें उस चित्त चोर का चित्र अंकित करके जब से दिखाया, तभी से यह पागल सी हो गई है—इससे पहिले तो प्यारी का इस प्रकार का भाव कभी नहीं देखने में आया।

यह कहकर ललिता श्रीराधिका के समीप उपवेशन कर अति मृदुस्वर से कहने लगी—प्रिये! तुम्हारी यह क्या दशा हुइ—तुम को ऐसा क्या दुख है—तुम्हारे मन में सर्वदा विकलता. दृष्टि में शून्यता, वाणी में विषमता दृष्ट होती है। तुम्हारा हेमसम शरीर विवर्ण, नेत्र दोनों अरुण एवं अश्रुपूर्ण हैं। हिम से आहत पद्म के समान मुख की शोभा मलिन हो रही है। तुम्हारी यह दशा देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। हम सब तो तुम्हारी निज की सेविका हैं—सर्वदा से सहचरी हैं—हम से क्यों छिपाती हो? प्रिये! तुम्हारी इस यातना से हमारे सब के मन में अत्यन्त कष्ट है। मन को खोलकर कहो तो, तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हुई?

ललिता के मर्म्मवाक्य श्रवणकर श्रीराधिका का हृदय उमड

आया—धैर्य का बांध टूट गया —लज्जा को परित्याग कर मन के भाव को खोलकर कहने लगीं—सखि ! मेरी बात तुम क्यों पूछती हो ? मैंने शोचा था कि, मन की बात मन ही में रखूंगी। अपनी आग में आप ही जलती रहूँगी। तुम लोगों से कुछ भी नहीं कहूँगी। अपना दुख कहकर तुम सब को दुख नहीं दऊंगी। किन्तु हृदय के वेग को दवाकर नहीं रख सकी। तुम से छिपाने की कौन सी बात है। और उसके छिपाने से कुछ लाभ भी क्या है ? और इस प्रकार छिपा भी कबतक सकती हूँ ? तुम जो यह जानना चाहती हो कि "मुझे क्या व्याधि है" सो मैं निश्चय नहीं कह सकती कि, मुझे क्या व्याधि है। भीतर बाहर कहीं भी मुझे शान्ति नहीं है—नयनों में नीद नहीं, चित्त में चैन नहीं, मन मेरा मेरे पास नहीं है। मैं तुम से यथार्थ कहती हूँ कि, अब सब प्रकार से मेरा मरण ही उचित है।

सखि ! अब मोय मरें सुख होय।
जीवन भार भयो अब सब विध, निशदिन बीतत रोय ॥
प्रथमहि सुनत श्याम द्वै अच्छर, सुधबुध दीनी खोय।
वंशी धुनि सुन, और बात अब, सुन न परत कछु मोय ॥
देख चित्र-पट जलद-श्याम को, लोक लाज दइ धोय।
धायगई देखन हित ताकूं, कहूं न पायो मोय ॥

कहते कहते राधिका की वाणि रुक गइ। गद्गद् कंठ से कुछ और भी कहने को थीं, सो न कह सकीं। ललिता के कंधा पर मस्तक रखकर उसके ऊपर झुक गईं। ललिता उत्कंठित होकर विशाखा से कहने लगी—"देखा, तैनें अपने काम का परिणाम ! क्या ऐसा काम भी किसी को करना उचित है ? अब क्या उपाय करेगी, सो आकर कर।"

विशाखा शीघ्रता से एक पंखा लाकर राधिका के मस्तक पर

पवन करने लगी, ललिता राधिका के मुखमण्डल को शीतल जल से शिंचन कर कान में श्याम नाम सुनाने लगी।

कुछ क्षण के अनन्तर राधिका को जब किंचित् वाह्यज्ञान हुआ तब अस्फुटित भाषा में कहने लगीं—श्याम-श्याम-श्याम-आहा. कैसे सुन्दर,—कैसे मधुर,—कैसे मनोहर हैं—एकबेर मेरी ओर देखो तो सही;—नहीं,-नहीं-नाम है—तब क्या नाम ही श्याम है ? अरे, कुछ भी तो समझ में नहीं आता। नहीं-नहीं-नाम क्यों होगा—श्याम ! यह तो श्याम ही हैं—प्यारे फिरकर खड़े हो ओ ! एकबेर नयनभर देखूं तो सही ! नहिं, यह तो नाम है—क्या केवल नाम ही है ? तब क्या नाम का हो ऐसा प्रभाव है ? तब तो नाम ही उच्चारण करो ! नाम ही मेरे श्याम हैं। आहा, कैसा सुन्दर, कैसा मधुर रूप हैः—

सजल जलद सम श्याम तनु, चरण सरोज समान।
चपला सम चंचल नयन, दहत सकल कुल कान॥
देखत मग में कान सखि ! प्रान भये वे चैन।
जग में अब घनश्याम बिन, नहिं निरखत कछु नैन॥

प्यारी ललिते ! बताओ, अब मैं क्या करूं ? उनका नाम, "श्याम" है, और यह नाम ही श्याम हैं। यह नाम ही मेरा सर्वस्व है, तो अबः—

जब से देखी श्याम छवि, सब विध भई अधीर।
श्याम नाम जप अब सखो, निश्चै तजूं शरीर॥

महाप्रभु अति आनंदित हो कर कहने लगे—सुन्दर ! अति-सुन्दर ! रामराय ? मालूम होता है, पूर्वराग में श्रीराधिका ने नाम ही को श्याम मान लिया है।

रामानन्द-हाँ प्रभु।

महाप्रभु-नाम और नामी में अभेद है, यदि यह बात है, तब तो ठीक ही समझा। तुम क्या कहते हो ?

रामराय—हाँ प्रभु, यही तो श्रीमुख से अनेक बार सुना भी है कि, जो नामी है वही नाम है।

महाप्रभु--हाँ,कहा तो था,किन्तु कहना जितना सहज है उसका अनुभव करना उतना सहज नहीं है। श्रीराधा-भाव का आभास प्राप्त हुये विना, जीव इस तत्व में प्रवेश करने का अधिकारी नहीं होता। परन्तु तुम लोग तो श्रीमती के नित्य सेवक हो, तुम्हारे लिये यह अस-म्भव नहीं है।

रामानन्द किंचित् हँस कर कहने लगे-रसमय ! आप श्रीमुख से जो कुछ भी आज्ञा करते हैं, वह सभी शोभा देता है। आप के श्रीचरणों में जो रहने को स्थान प्राप्त हो जाता है, यही क्या कम सौ-भाग्य की बात है ?

महाप्रभु-खैर, अब इन बातों को रहने दो। श्रीमती राधिका का मन श्याम नाम सुनते ही श्याम के लिये अत्यन्त व्याकुल हो उठा। रामराय ! श्याम नाम में क्या ऐसी ही शक्ति है ?

रामानन्द—हाँ प्रभु, नाम की शक्ति का प्रभाव तो आपने अनेक वार उपदेश किया है—परन्तु पूर्वरागमयी श्रीमती राधिका के हृदय में जो नाम के प्रभाव का प्रकाश होता है, हम लोग उसे किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं ? नाम की महिमा परम उज्वल है. और श्रीमती का पूर्वराग भी परम मधुर है। इस परम उज्वल और परम मधुर का जो अद्भुत संमिलन है, वह वास्तव में परम चमत्कार है।

महाप्रभु--रामराय ! तुम्हारे मुख से श्रीकृष्ण कथा अत्यन्त ही मधुर ज्ञात होती है। साक्षात् दर्शन के अनन्तर पूर्वराग की क्या अवस्था होती है, क्या उसका कुछ वर्णन करोगे ?

रामानन्द--प्रभो ! पूर्वराग ही श्रीकृष्ण दर्शन का प्रधान साधन है। पूर्वराग उत्कंठा को वढाता है-उत्कंठा प्रवल होने पर ही साक्षात् दर्शन प्राप्त होता है। श्रीमती राधिका उन्मादिनी की तरह सब भूल कर

कृष्ण नाम में और कृष्ण ध्यान में ही निरन्तर मग्न रहतीं हैं। एक दिन कालिन्दी तट पर कुसुमित कुंज बन में सहसा श्रीकृष्ण के दर्शन हो गये-जिस मदनमोहन रूप को देख कर श्रीराधिका कहने लगीं:-

मकरत मणि सम वदन सुशोभित, मुखरित मुरली गीत।
पशु पक्षी पुलकित, यमुना—बहन लगी विपरीत॥
राजत कुंज पुंज व्रज-रस को, मन्मथ मोहन रूप।
देखत ही व्रज नव युवतिन को, आनँद बढत अनूप॥
चन्दन चर्चित स्याम कलेवर, मृग मद कुंकुम भाल।
अलिकुल गुंजित धरणि विलुंठित, शोभित गल वनमाल॥
अरुण चरण अति कोमल शीतल, जीते सरद सरोज।
व्रज वनिता नित पूजत जिनकूं, दै निज कमल उरोज।

रामानन्द का गान समाप्त होते ही स्वरूप ने अन्य गान आरम्भ करदीया:—

जलद श्यामतनु रुचिर सुधाकर, उदित भयो व्रज आन।
नैन चकोर सुधा हित व्याकुल, निमिषकाल युग जान॥

स्वरूप का गान श्रवणकर महाप्रभु अति चमत्कृत होकर निर्निमेष नेत्रों से स्वरूप के मुख की ओर देखने लगे। स्वरूप ने सहसा गान बंद करदीया। तब महाप्रभु उत्कंठित हो कहने लगे—स्वरूप? हां, इसके अनन्तर—

स्वरूप पुनः गान करने लगे:—

देखे श्याम आज यमुना तट।
लोग कहत बौरी भइ राधा, जबसों मिलो बाय वह नंटखट।
बांकी चितवन जग मनमोहन, वनमाला भूषित गल सोहन,
गुंजत मधुर मधुप मधुलोभी, लिपट रहे बनमाला की लट।

मदनबान सम तीखे लोचन, निरख करत सब सुधबुध मोचन,
नाशत धर्म पैठ हीये में, खैंचत प्रान सहित मन चटपट।
ऐसो रूप सुनो नहिं देखो, नहिं कोऊ ग्रन्थन में लेखो,
जो देखत सो ही मोहित व्है, खोय देत कुल कान सु चटपट।

स्वरूप का गान समाप्त हो गया, किन्तु उसकी झंकार समाप्त नहीं हुई। वह गूंजती ही रही। तीनों ही भाव में मग्न होकर सुमधुर गीत का सुधारस पानकर विह्वल हो गये। कुछकाल के अनन्तर महाप्रभु गद्गद् कंठ से कहने लगे– रामराय! कृष्ण दर्शन से उत्पन्न पूर्व–अनुराग का प्रभाव तो देखो!

जलद श्यामतनु रुचिर सुधाकर, उदित भयो व्रज आन।
नैन चकोर सुधाहित व्याकुल, निमिष काल युग जान॥

नवीन प्रेम की व्याकुलता और तन्मयता कैसी अपूर्व है। निमिषमात्र काल भी असह्य है। श्रीराधिका ने देखा कि, यह तो रूप नहीं है, मानों सुधा का समुद्र है। राधिका नेत्रों के सन्मुख सुधासिंधु का दर्शन कर,उसके पान करने के निमित्त सतृष्णभाव से व्याकुल हो उठीं। इतनी अधिक तृष्णा थी कि, निमिष काल भी युग के समान प्रतीत होने लगा। स्वरूप! इस पद की भाषा काव्य कल्पना की भाषा नहीं है और अस्पष्ट अनुभव भी नहीं है। यह तो साक्षात् प्रत्यक्ष है, इसकी तुलना दूसरी नहीं है। क्या कहते हो रामराय?

रामानन्द—हाँ प्रभु, ठीक है। श्रीराधिका ने पूर्ण नेत्रों से अच्छी तरह श्याम रूप का दर्शन भी तो नहीं किया, तो भी यह दशा हो गई। श्रीराधिका कहती हैं, सखि:—

निरखे श्याम तनक जो मैंने, कर आंचर की ओट।
भइ बिकल मैं मदनबान सों, लगी हिये में चोट॥
मो मन अब निश्चय यह सजनी, भयो विधाता बाम।

निरखें जो लोचन भर श्यामहि, तिनकू कोटि प्रनाम ॥
और कहत सब, कान श्यामघन, मोय लगत विजुरीसम ।
कामिनि ताहि परस सुख पावत, पर, जारत हीयो मम ॥
प्रेमवती वनिता ताके हित, त्यागत तन मन आद ।
मोय निगोडी अबहु मन में, है जीवन की साद ॥

श्रीराधिका कहती हैं—सखि ! मैंने तो पूर्ण दृष्टि से श्यामसुन्दर को देखा भी नहीं, आधी से आधी और उससे भी आधी दृष्टि से, जब उस रूप माधुरी के दर्शन किये तव यही ज्ञात हुआ कि, कोटि कोटि कुसुम वाणों से मेरा हृदय विद्ध होगया, मानो प्राण अब निकलना ही चाहते हैं। सखि ! इसमें अब कुछ भी संदेह नहीं है कि, विधाता पूर्ण-रूप से मेरे प्रतिकूल है। नयन के अष्टम भाग से देखने में ही मेरी यह दशा हो गई। जो रमणी पूर्ण दृष्टि से श्याम रूप दर्शन करने का साहस करती हैं, उनके चरणों में मेरा कोटि कोटि प्रणाम है।

सखि ! और सव कृष्ण को घनश्याम कहती हैं, जो कहैं सो कहैं—परन्तु मेरे विचार से श्याम, घनश्याम नहीं हैं, वे साक्षात् विद्युत् हैं। रसवती स्त्री सब उनके स्पर्श रस के पाने की इच्छा करती हैं—किन्तु मेरे विचार से कृष्ण का स्पर्श, रस नहीं है, वह साक्षात् अनल है, मेरा दुर्भाग्य और भी देख ! प्रेमवती प्रेम के लिये अपने प्राण तक दे देती हैं—किन्तु इस अस्थिर जीवन के लिये मेरी वासना का नाश नहीं होता. मुझे अब भी जीने की साद है।

रामानन्द की बात समाप्त होते ही, अति उत्कंठित होकर महाप्रभु कहने लगे—रामराय ! जब कि श्रीमतीराधिका श्यामसुन्दर के दर्शनों के लिये इतनी उत्कंठित थीं, तो, पूर्णदृष्टिसे उनका दर्शन क्यों नहीं किया ?

रामानन्द ने कहा—प्रभो ! इस का कारण कवि ने इस पद में श्रीराधिका के मुख से ही प्रकाश कराया है—

मदन यह कैसी तेरी वान ?
नैन निरख अपराध करत हैं, दुख पावत हैं प्रान ॥
लोग चवाव करैं या डरसों, मैं निरखत नहिं कान ।
निरखो तनक ओट पटकी कर, तबसों भइ अजान ॥
आवत जात सभी नरनारी, को निरखत नहिं कान ।
सबकों छांड निठुर मोही पै, मारत तक तक वान ॥

श्रीमती राधिका अति दुखित हो कर कहने लगीं—मदन ! यह तुम्हारी कैसी बुरी वान पड़ गई है ? भला देखो तो, यह कौन से न्याय की बात है कि, अपराध कोई करै, और दण्ड किसी को मिले--मैंने जैसे तैसे माधव के तनक ही दर्शन किये होंगे कि, उसी दृष्टि-दोष के कारण तुम मेरे हृदय को पीड़ा पहुँचा रहे हो—लोग चवाव करेंगे इस भय से तो कभी मैं श्याम-दर्शन का साहस ही नहीं करती हूँ -मैंने घूंघट की ओट कर तिरछी चितवन से उनके तनक ही दर्शन कीये थे, तिस पर यह विपद् । घर से बाहर आते जाते कृष्ण को कौन नहीं देखता है, परन्तु तुम्हारा कुसुमशर और तो कहीं नहीं चलता, केवल मेरे ही हृदय को निशि दिन बेधता है ।

महाप्रभु—यह भाव बड़ा ही अद्भुत है । क्या कहते हो स्वरूप !

स्वरूप—यह अद्भुत क्या सामान्य अद्भुत है ? इसके समान तो कोई दूसरा है ही नहीं । राय महाशय जब गान कर रहे थे, तव मन में यही ज्ञात होता था कि मानों स्वयं श्रीमती राय महाशय के रूप में अपनी वेदना प्रकाश कर रही हैं ।

रामानन्द—अच्छा तो, एक पद और गान करता हूँ सुनिये:-

मन्मथ को अन्याय सहूं मैं कबलों सजनी ।
ज्यों हीं निरखूं श्याम तनक, जारत दिन रजनी ॥

क्यों देखे घनश्याम, भली ही मैं विन देखे।
जो जीवन हो शेष नशो वह मेरे लेखे॥
कृपासिन्धु भगवान् ! पाप मैंने का कीयो।
जो औरन सुखदेत, वही तापत मम हीयो॥
ऐसो को जगमाहिं कहूं जासों दुख अपनों।
सबविध भइ निकाम, भयो अब सब सुख सपनों॥

श्रीमती राधिका कहती हैं–सजनि ! मैं मन्मथ के अन्याय को कब तक सहन करूं। मैंने श्याम रूप के तनक ही दर्शन किये होंगे, तिस पर इतनी ज्वाला है, जिस से रात दिन जलती हूँ। इस से तो विना दर्शन किये ही अच्छी थी–जो कुछ जीवन बाकी था, उस से भी हाथ धो बैठी। हे भगवान् ! मैंने ही ऐसा क्या अपराध किया था कि, जो औरों को सुख देता है, मुझे वही दुख देता है। संसार में ऐसा अपना कौन है जिस से यह अपना दुख कहूँ। मुझे तो अब सब प्रकार से जीवनमृत ही समझो—मेरे अब सभी सुख स्वप्न से हो गये।

महाप्रभु, घबडाकर पूछने लगे--अच्छा इसके पीछे–रामराय ! फिर क्या हुआ ?

रामानन्द—इसके पीछे की बात, स्वरूप पंडित से सुनिये। अभी उस दिन, मैं और ये दोनों सागर तटपर गये थे। उस समय भी ये मन ही मन में कुछ गुनगुना रहे थे। मैंने कहा मन ही मन क्या गा रहे हो ? इस रस में से थोड़ा सा मुझे भी देने से क्या कुछ कम हो जायगा ? तब इन्हों ने यह गान किया था--" श्यामदरश को चाव सखी हो मेरे मन में"

महाप्रभु--यह भी तो उसी कवि की कविता है, जिसकी पहिले गान की थी ?

रामानन्द हां प्रभु

महाप्रभु—स्वरूप ! तुम लोग उस दिन समुद्र तटपर परिभ्रमण

करने गये—मुझे भी संग क्यों नहीं ले लीया ? मेरे साथ इस प्रकार का निर्दयपन ! खैर, जाने दो—अब "श्यामदरश को चाव सखी हो मेरे मन में" इस पदके सुनने का मेरे मनमें बड़ा चाव है। एकबेर गाओ तो !

स्वरूप ने दूसरी बात की अपेक्षा न कर उसी समय गान आरम्भ कर दीया:—

श्याम दरश को चाव सखी हो मेरे मन में।
देखत ही उन्माद वढो मेरे सब तन में ॥
भयो मोय अज्ञान तभी सों हियो जरत है।
कहा कहूं कहा सुनूं कछु नहिं जान परत है ॥
वरसत दोऊ नैंन सघन-घन ज्यों सामन के।
धड़कत निशदिन प्रान छूट गये छक्के मन के ॥
दरशन ही क्यों भये निगोडे निठुर श्याम के।
गई मिलन-सुख भूल सु लाले परे जान के ॥
नाजानूं चितचोर श्याम ऐसो का कीनों।
देखत ही मन प्रान सभी मेरो हर लीनों ॥
हँस मुसकाय दिखाय गयो ऐसो कछु करतव।
भूलन मैं नित चहत जिन्हैं नहि भूलत मन अब ॥

स्वरूप, गान की तान में प्राण मिलाकर, व्रजविरहिणी के आर्त-स्वर के साथ साथ मृदुमधुर कंठ से ऐसा गान करने लगे कि, जिसको श्रवणकर कोई भी अश्रु संवरण (रोक) नहीं सका। महाप्रभु एकबार ही अधीर हो उठे। रामानन्द अधोमुख कर अश्रुपात करने लगे। स्वरूप का कंठ पहिले तो गद्गद् हो उठा, फिर पीछे बिलकुल ही रुक गया। कृष्णकथा-मुखरित गंभीरा-मन्दिर सहसा एकवार ही निःशब्द हो गया। चित्र की सी लिखी तीनों श्रीमूर्तियां ही मौन अवलम्बनकर नेत्रों से अश्रु विसर्जन करने लगीं।

कुछ क्षण के अनन्तर महाप्रभु आत्मसंवरण कर कहने लगे—रामराय ! श्रीराधिका का पूर्वराग, प्रेमरस-सिन्धु की एक महातरंग है—प्रेमविरह उसकी एक महाशक्ति है। इसके वर्णन को श्रवणकर भी भक्त का चित्त श्रीभगवान् के लिये व्याकुल हो उठता है—उस समय निरंतर उनके अनुसंधान में तत्पर रहता है—अन्त में बिलकुल ही तन्मय हो जाता है। व्रजरस में प्रवास, मान, माथुर आदि की तरह पूर्वराग भी विरह की तरंग में अधीर कर देता है। रामराय ! विरह-विरह में ही श्रीराधिका की कैसी दुखमय दशा संघटित हो गई।

रामानन्द—सो तो मैं आप में ही देख रहा हूँ—महाभाव-स्वरूपिणी श्रीराधिका के सभी भाव तो प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।

महाप्रभु—यह सब बातें जाने दो। तुम तो अच्छी तरह जानते हो कि—मैं एक पागल मनुष्य हूं—क्या करते करते क्या करने लगता हूँ—क्या बोलते बोलते, क्या बोलने लगता हूँ—इसकी कुछ ठीक नहीं है। मैं व्रजरस के विषय में क्या जानूं ? तुमलोगों से जो कुछ श्रवण करता हूं, उसी का केवल आस्वादन मात्र करता हूं। यदि तुमलोग प्रदान न करो तो मुझे यह रस कहाँ से प्राप्त हो सकता है ?

रामानन्द—यह ठीक है। जिस बात को कह कर आपका मन प्रसन्न हो, वही कहिये। इस क्षुद्र रसना में शक्तिसञ्चार कर जो आप व्रजरस का आस्वादन करते हैं—यह कौन नहीं जानता ? आप स्वतन्त्र हैं। इस अधम दासको तो आपने अपने समीप बैठने का जो अधिकार दे रखा है, सो यही क्या कम है ?

महाप्रभु—अच्छा, रामराय ! व्रजविरहिणी श्रीराधिका के माथुर-विरह में तो दश भीषण दशाओं की बात सुनी जाती है—इस पूर्वराग में भी तो उन सब दशाओं का भाव मालूम होता है।

रामानन्द—हाँ प्रभु, पूर्वराग में भी लालसा, उद्वेग, जागर्या, तानव, जडिमा, वैयग्र, व्याधि, उन्माद, मोह और मृत्यु यह दश दशा हैं।

महाप्रभु—स्वरूप ! क्या जागर्या दशा का वह एक पद तुमको याद है ?

स्वरूप—कौनसा पद, प्रभु ।

महाप्रभु—वही, जो उस दिन रात को यहाँ गाया था—"कहा कहूँ तुमसों मनमोहन"

स्वरूप—हाँ प्रभु ! वह याद है । यह कह कर ही गाने लगे—

कहा कहूं तुमसों मनमोहन !
अति भोरी वृषभान किशोरी, व्याकुल सदा रहत है तुम विन ।
निशदिन जाग जपत तुमही कों, भूमि परत भैराय सु छिन छिन ।।
आधीरात जात ही, भामिनि, लाज छांड़ रोवत है घन घन ।
सखी ताहि केतउ समझामें, एक न भावत है वाके मन ।।

स्वरूप ने नेत्रों में जल भर कर गद्‌गद् कण्ठ से गान समाप्त किया । महाप्रभु कुछ ही क्षण के अनन्तर दीर्घनिश्वास लेकर कहने लगे—समझे तो ? रामराय !

रामानन्द गम्भीरभाव से बोले—समझ गया प्रभु—न क्यों समझता ? प्रतिदिन ही तो देखता हूँ—समस्त रात्रि जागरण कर नाम जपते हौ, व्याकुल होकर रोदन करते हौ, थर थर काँपने लगते हौ, और वाह्यज्ञान हीन होकर गम्भीरा-मन्दिर से वाहर जाने की चेष्टा करते हौ । महाभाव स्वरूपिणी श्रीराधिका की भावकान्ति धारण करके तो यह रसराज-महाभाव सम्मिलित मूर्ति प्रकट ही हुई है—कृपा करके जो समझाते हो, वही समझता हूँ—जो सुनाते हौ, वही सुनता हूँ—जो दिखाते हौ. वही देखता हूँ—और जो वुलवाते हौ वही बोलता हूँ – इसी लिये सब ठीक ही समझता हूँ ।

स्वरूप महाप्रभु की ओर हँस कर कहने लगे—कहिये, ठीक कहा तो ? रामराय से दुवका-छिपकी या किसी प्रकार की चतुराई नहीं चलेगी । इनसे कृपामय ! आपने अपने स्वरूप को भी तो छिपाने

की चेष्टा की थी--क्या उसमें आपको कुछ सफलता हुई थी ? सुनिये, रसमय !

हाथी को बांधते जो, मकड़ी के जाल में ।
वे क्या कभी फसेंगे, किसी इन्द्रजाल में ।।

आप मूर्तिमान पूर्वराग हैं, और आप ही मूर्तिमान माथुर हैं। हमलोगों से इतना छिपाव क्यों ?" यह कह कर स्वरूप उच्चैस्वर से हँसने लगे--रामानन्द ने भी अति उत्साह के सहित स्वरूप के हास्य में सहयोग दीया। गम्भीरा-मन्दिर में हास्य की तरङ्गें उठने लगीं। गोविन्ददास को विना आनन्द के अच्छा नहीं लगता था। रोते रोते उनका हृदय फटने लगता था। इस समय सहसा हास्य की तरङ्ग लहरी देख कर गोविन्द और शङ्कर ने भी इस हास्य में सहयोग प्रदान किया।

महाप्रभु प्रसन्न मुख से कल्पित क्रोध प्रकाश कर कहने लगे-- यह बड़ी सुन्दर बात है--मालूम होता है मुझको इस प्रकार से दबाने के लिये ही तुमलोगों ने यह हास्य आरम्भ किया है। मेरा अपराध तो केवल इतना ही है कि, मैं अपने मानसिक ताप के कारण रात्रि को शयन नहीं कर सकता हूँ। भला कहिये, इसके साथ ब्रजरस के पूर्वराग का क्या सम्बन्ध है ? और मैं तो एक दीनहीन कङ्गाल सन्न्यासी हूँ—अपने दुख में आप ही रोता हूँ, इसको लेकर तुमलोगों की ये सब बातें क्यों हैं ? और इतने हास्य का ही क्या कारण है ?

रामानन्द सन्मान पूर्वक कहने लगे—आप लीलामय हैं— स्वतन्त्र हैं। दीनहीन संन्यासी भी आप हैं, और ब्रजरस के रास-विहारी भी आप हैं। आपके विषय में कुछ कहने की हम लोगों की शक्ति ही क्या है—और अधिकार भी क्या है ? हम लोगों का हास्य और रोदन जो कुछ है वह भी सब आप ही की लीला है, आप ही हास्य कराते हैं, आप ही रोदन। आप स्वयं ही पूर्वराग के अनन्त

भावों को प्रकट कर दिखाते हैं, और फिर आप ही उन्हें हमारे मुख से श्रवणकर चमत्कृत होते हैं। यह क्या हास्य का विषय नहीं है ?

महाप्रभु नम्रभाव से कहने लगे—मैंने कहा तो सही, मैं जो ब्रजरस का आस्वादन करता हूँ, वह ऋण लेकर करता हूँ; उस में मेरा निज का कुछ भी नहीं है।

स्वरूप हँसकर कहने लगें—इस बात को कौन अस्वीकार करता है ? यह क्या हम लोग नहीं जानते, या नहीं समझते ?

महाप्रभु—मैं इस रसास्वादन के लिये तुम लोगों का ही ऋणी हूँ।

स्वरूप—यह बिलकुल मिथ्या है। इस ऋण के जो महाजन हैं; उनको गुप्त रखने पर भी क्या वे गुप्त रह सकते हैं ? वह रस-माधुर्य, गुप्त रहने वाली वस्तु नहीं है।

महाप्रभु—अच्छा, यह सब बातें अब रहने दो। रामानन्द की कृष्णकथा और तुम्हारा गान श्रवणकर आज जो पूर्वराग का अपूर्व सुधास्वादन प्राप्त हुआ है, उसे मैं आजीवन नहीं भूलूंगा। किन्तु पूर्व-राग के अनन्तर मिलन की कथा श्रवण किये बिना प्राणों में शान्ति नहीं होतीं। रामराय ! तुम्हारे मुख से आज मैं मिलन की कथा भी श्रवण करूंगा।

रामानन्द—दयामय ! श्रीकृष्ण दर्शन की लालसा में श्रीमती राधिका की उत्कंठा क्रमशः और भी अधिक बढने लगी, वे चिन्ता ही चिन्ता में क्षीण होने लगीं, उनका शरीर अत्यन्त कृष हो गया, समस्त रात्रि. व्याकुलता में ही व्यतीत होने लगी, नेत्रों से निद्रा एक-बार ही दूर हो गई। बीच-बीच में मूर्छित होने लगी--मूर्छा दिन पर दिन बढने लगी--यहां तक कि कभीकभी तो श्वासावरोध पर्यन्त होने लगा।

यह दशा देखकर श्रीमती राधिका की दूती श्यामसुन्दर की खोज में बाहर निकली, और उन्हें एकान्त में पाकर श्रीमती की समस्त

व्यवस्था खोलकर कह सुनाई। दूती ने कहा--"श्रीमती राधिका कुसुम शर के अत्याचार से मृतप्राय हो रही हैं-आपके अतिरिक्त अब उनका कोइ अन्य उपाय नहीं है।"

श्रीकृष्ण दूती की बात सुनकर विस्मय का कृत्रिमभाव दिखाकर कहने लगे--यह क्या, यह कुसुमशर कौन है ? और यह दुष्ट वहां गया ही क्यों ? सुनयनी राधिकाने ऐसा उसका अपराध ही क्या किया, जो वह दुष्ट उसको इतना कष्ट दे रहा है। दूति ! वह क्या कंस का भेजा हुआ कोई है ?

यह कहकर श्रीकृष्ण वीर भाव दिखाकर कहने लगे--मैं अभी उस दुष्ट को उचित दण्ड देकर उस विचारी बालिका का कष्ट निवारण करता हूँ। और यह बड़े आश्चर्य की बात है कि, मेरे वर्तमान रहते ब्रजरमणीयों को इतनात्रास !

विदूषक— मित्र तुम समझे नहीं। यह कंस का कोइ नहीं है, मेरा ही दूसरा नाम कुसुमशर है। तुम क्या मेरे शरीर से तनिक भी हाथ लगा सकते हो ? मैं ब्राह्मण हूँ।

श्रीकृष्ण—हट मूर्ख ! इस समय परिहास का प्रयोजन नहीं है।

विदूषक—ओ दूती, तू मेरी एक बात सुन ! मेरे इस मित्र के हाथ में दो चार लड्डू लाकर देने से ही, ये अभी जाकर तेरी प्यारी का सब दुख दूर करदेंगे। ये उस दुष्ट कुसुमशर का सारा गर्व खर्व कर आमेंगे।

दूती—श्यामसुन्दर ! आपके होते श्रीवृन्दावन की रमणीयों को और दूसरा दुख क्या है ? और दूसरा कोइ कुसुमशर भी कहां से आया ? आप ही इस वृन्दावन के अप्राकृत नवीन मदन हैं, आप ही के द्वारा प्यारी राधिका को यह कष्ट प्राप्त हो रहा है।

श्रीकृष्ण विस्मित से होकर कहने लगे—यह क्या कहती है, मेरे द्वारा ? यह भी कभी सम्भव है ? मैं तो गोपबालकों को सङ्ग

लेकर इस यमुनातट के वनों में भ्रमण करता हूँ। ये सब सर्वदा ही मेरे सङ्ग सङ्ग रहते हैं। मैं इस कालिन्दी के श्यामल तट की आसपास की भूमि को छोड़ कर अन्यत्र कहीं जाता ही नहीं हूँ। तेरी सखी एक कुलवधु है। वह मुझे किस प्रकार देख सकती है ? मुझे तो तेरी इस बात पर विश्वास ही नहीं होता।

गोप-कुमार-समाज मिमंसखि, पृच्छकदानुगतोऽहं।
कथमिवमामनुपश्यतिदिशिदिशि, कथमिवकलयति मोहं॥
सखि परिहर वचन विलासं।
गोपशिशूनां विदितमिदं ममजनयति-गुरु-परिहासं॥
यद्यपि कुलबालयापि कुलस्थितिरनया परिहरणीया।
किमिति तदामयि रति रति बिकला बालेकिलकरणीया॥

दूती ! यदि तुझे मेरी बात का विश्वास न हो तो, ये सब गोप-बालक, जो यहाँ हैं, इन्ही से तू पूँछ देख, ये क्या कहते हैं ? तेरी सखी ने मुझे कहाँ देखा ? और देख कर भो वह भला मुझ पर कैसे मोहित हो सकती है ? दूती ! यहाँ पर तू इस प्रकार की बात न कर। यदि ये सब गोपकुमार यह बात सुन पामेंगे तो, मेरे लिये अत्यन्त लज्जा की बात होगी। ये लोग मेरा कितना परिहास करेंगे ? यद्यपि तेरी कुलकामिनी सखी कुलकी मर्य्यादा को परित्याग करने के लिये तयार भी है, किन्तु मैं अभी वालक हूँ, उसके प्रेम के अयोग्य हूँ, उसका यदि इस प्रकार अयोग्य ही में अनुराग है तो मैं क्या करूँ ?

श्यामसुन्दर की वातें सुनकर दूती एकबार ही निराश हो गई, भय से उसका मुख सूख गया, शरीर थरथर काँपने लगा, मस्तक नीचा कर पृथ्वी की ओर देख कर अविरत अश्रुपात करने लगी, और श्रीमती के पूर्वराग की याद कर मन-मनमें अनुताप करने लगी—सखी ने कैसे अयोग्य स्थान में प्रेम किया है—अब मालूम होता है कि प्यारी को कालकूट की बिषम ज्वाला में जल जल कर

प्राण परित्याग करने पड़ेंगे। हाय! मैं अब क्या करूँ? राधिका को कैसा भ्रम है? उसने शीतल चन्द्रमा जानकर श्याम से अनुराग किया है, किन्तु अब मालूम हुआ कि, श्याम चन्द्रमा नहीं हैं, राहू हैं। सखी से जाकर क्या कहूँगी? श्यामसुन्दर की बातें सुन कर उसकी क्या दशा होगी?

खैर, जो कुछ हो, एकबेर फिर से कह देखूँ -यह शोच कर, दूती सजल नयनों से श्यामसुन्दर की ओर देखती हुइ गद्गद् वाक्य से कहने लगी—श्यामसुन्दर! शरणागत का तिरस्कार करना क्या उचित कार्य है?

श्रीकृष्ण—दूती! यह बात मुख से फिर न निकालना। यदि और कोइ बात कहने की हो तो कहना। ऐसी पाप की बात वारवार कहना उचित नहीं है।

दयितो दयितस्तस्या वालेयं कुलपालिका।
अकाण्डे किमसौ मुग्धे धत्तामाचार विप्लवम्॥

यह तो तू भी जानती ही है दूती! पति सेवा करना ही नारियों का परम धर्म है। तेरी सखी कुलवधु है, विशेषकर उसका पति उसको अति प्रिय है। वह व्यर्थ ही कुल को क्यों जलाञ्जलि दे रही है? मैं ब्रजका गोपबालक, वह राजकुमारी—मुझसे अनुराग करके उसे क्या सुख होगा? उलटा, व्यर्थ ही कुलका त्याग और धर्म का नाश करेगी। ऐसा कुत्सित कर्म्म भी कोइ करता है? तू जा, उसको इस कार्य से निवारण कर!

विदूषक—ओ, ग्वालिनी! सुन! मेरे ये प्रिय मित्र अब बड़े धार्मिक हो गये हैं। तेरे इन आँसू बहाने से अब कुछ नहीं होगा, वरञ्च इनके हाथ में तू दो लड्डू दे सके तो ये ले सकते हैं। रोने धोने से कुछ भी फल नहीं। जा यहाँ से।

दूती दीर्घनिश्वास लेती हुइ सजल नेत्रों से श्रीराधिका के

निकट लौट आई। उस समय भी दूती के दोनों नेत्र जल से छलछल कर रहे थे, आंसू ढलक ढलक कर गिर रहे थे, कंठ गद्गद् हो रहा था। दीर्घ निश्वास लेकर श्रीमती से कहने लगी—सुन्दरि! कृष्ण-दर्शन की अभिलाषा अब अपने मन से दूर करो ऐसे निठुर पुरुष से भी क्या प्रेम करना चाहिये? अब तुम्हारी आशा पूर्ण होना असंभव है। मैंने कितनी ही तुम्हारे दुख कि बातें उनसे कहीं, उनको सुनकर उनके हृदय में दया आना तो दूर रहा, उलटी और निर्दयपन की बातें कहीं, जिन्हें मैं तुम्हारे आगे क्या कहूँ, कहने से छाती फटती है।

यह कहकर ही दूती के मुख से और दूसरा शब्द नहीं निकला। श्रीमती राधिका मूर्छित होकर धरणी पर गिर पड़ीं। अनेक यत्नों से जब उनको चेतना हुई, तब रो रो कर कहने लगीं—सखि! श्यामसुन्दर ने मेरी उपेक्षा करदी, यह भी कानों से सुनना पड़ा? इस में असम्भव भी क्या है? मैं क्या उनके योग्य हूँ? किन्तु दुराशा क्या नहीं कराती? प्रेम भी पात्र-अपात्र का विचार नहीं करता। अब बताओ मैं क्या उपाय करूं? अब श्यामसुन्दर का मिलना असम्भव है, मैं अच्छी तरह से जानगई। और जब कि, उनके मिलने की कोई आशा नहीं है, तब जीवन से क्या लाभ है? अब मरण ही इसका प्रतिकार है। सखि! मैं श्याम का नाम जपती जपती और उनके रूप का ध्यान करती करती कालिन्दी के गंभीर श्यामल जल में ये तापित जीवन विसर्जन करूंगी।

किन्तु सखि! तुम सब ने मेरे कारण अनेक कष्ट सहे हैं। अब मरण के अनन्तर मेरी एक सहायता और भी करना-मेरा शरीर श्रीवृन्दावन से बाहर न हो, इसलिये किसी तमालवृक्ष से भुजलताओं को बाँधकर शरीर को रहने देना--कदाचित् श्यामसुन्दर भ्रम से भी इस मार्ग में भ्रमण करते हुए मुझे देखलेंगे तो, मेरी संपूर्ण आशा परिपूर्ण हो जायगी।

श्रीमती पुनः मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं। सखियां सब विलाप करने लगीं; ललिता सब को समझा समझा कर कहने लगी— इस समय तुम लोगों के रोने से कुछ भी लाभ नहीं है। श्याम को किसी प्रकार यहां अब लाना ही पडेगा तभी काम चलेगा। अब की बार मैं स्वयं जाती हूँ—यदि वे अब भी न आयेंगे तो, मैं उनके चरणों में अपना शिर पटककर प्राण दे दूंगी, और उनको नारी हत्या का दोषी बनाऊंगी। तुम सब श्रीमती के निकट रहकर अच्छी तरह इनकी परिचर्या करती रहो, और सब इस बात का विशेष ध्यान रखना कि, इस बीच में इनका कहीं प्राणान्त न हो जाय।

यह कहकर ललिता श्याम की खोज में बाहर निकली, इधर श्यामसुन्दर दूती को विदाकर मन मन में पश्चात्ताप करने लगे—मैंने कैसा अनुचित कार्य किया—हँसीहँसी में इतनी कठोर बातें कह डालीं। श्रीराधिका का हृदय कुसुम से भी अधिक कोमल है। वे क्या मेरे इन वाक्य बाणों को सहन कर सकेंगी? अब इसका क्या उपाय है?

श्यामसुन्दर वंशीवट के नीचे बैठे हुए यह शोच विचार कर ही रहे थे कि उसी समय ललिता आकर उनके सन्मुख उपस्थित हुई। ललिता को विशेष वृत्तान्त कहने की कुछ आवश्यकता नहीं हुइ। श्रीमती की अन्तिम दशा का वर्णन करते ही श्यामसुन्दर के नेत्रों से अश्रुपात होने लगा:—

सुनतहि श्रीघनश्याम के, भरे सुलोचन नीर।
ताही छिन मन प्रान सह, व्याकुल भयो शरीर॥
व्है अधीर बोले तुरत, ललिता सुनो सुजान।
दशा जु प्यारी की कही, वही दशा मम जान॥

इसक अनन्तर फिर क्षणभर भी विलम्ब न कर शीघ्र ही ललिता के सहित श्यामचन्द्र, श्रीमती के कुञ्ज द्वारपर आकर उदित हो गये। श्यामसुन्दर के आगमन का संवाद सुनते ही श्रीमती की मूर्छा भंग हो

गई। नेत्र उन्मीलनकर देखा तो, उन्हीं हृदय रंजन मनमोहन बंशीधारी श्यामसुन्दर के दर्शन हुये।

देखत श्याम प्रेम मन उमगो, लाजहि मुख ढक लीनों।
कांपत केलि समागम जानकै, नैन नीर तज दीनों॥
माधव मोहित व्है लखि प्यारी, तुरत अंक भर लीनीं।
श्याम परस सों पुलकित राधा, चूमत ही हँस दीनीं॥

रामानन्द महाप्रभु के श्रीमुख की ओर निरीक्षण कर कहने लगे—दयामय! किसी प्रकार से आपकी आज्ञा का पालन तो ठीक ठीक हुआ?

महाप्रभु—आहा, सुन्दर, अति सुन्दर! कैसा मधुर और मनोहर मिलन है। श्रीकृष्ण प्रेम का माधुर्य ऐसा ही है! रामराय! यथार्थ बात तो यह है कि, "राग" कोइ सहज वस्तु नहीं है। प्रीति के आकर्षण में प्रिय वस्तु के प्रति मनका जो स्वाभाविक आवेश है, उसी का नाम "राग" है। यह आवेश या आविष्टता क्या कुछ सामान्य बात है? जब चित्त सब विषयों को भूल कर किसी एक विषय की ओर अग्रसर होता है तब उसको आवेश या आविष्टता कहते हैं। किन्तु रागात्मिका भक्ति में केवल आविष्टता यथेष्ट नहीं है—परम आविष्टता होनी चाहिये—और केवल परम आविष्टता से भी कार्य सिद्ध नहीं होता—स्वारसकी-परम-आविष्टता होनी चाहिये—उसी का नाम राग है। अर्थात् प्रिय वस्तु की ओर चित्त की जो स्वाभाविक आकर्षणता या आविष्टता है वह जब अपनी अन्तिम दशा पर पहुँच जाती है तब उसको "राग" कहते हैं।

श्रीकृष्ण मिलन से पूर्व उनके नाम गुण श्रवण कर या रूप दर्शन कर उनके प्रति जो इस प्रकार का "राग" उत्पन्न होता है उसी को "पूर्वराग" कहते हैं। श्रीभगवान् की व्रजलीला में इस पूर्वराग का जैसा प्रकाश होता है वैसा अन्यत्र होना अत्यन्त दुर्लभ है।

रामराय! तुम्हारे लीला वर्णन और स्वरूप के गान से व्रजरस

मूर्तिमान हो उठता है। तुमलोग मेरे मर्म को अच्छी तरह जानते हो-- तुमसे मैं अधिक क्या कहूँ ? मेरी अवस्था इस समय ऐसी हो गइ है कि, क्षण क्षण में प्राण व्याकुल हो उठते हैं--ऐसी अवस्था में तुमलोगों को मेरे निकट न रहने से, न मालूम किस समय क्या दशा हो, सो नहीं कह सकता।

रामानन्द--दयामय ! आपने अपना चिरदास और निजजन जान कर जो चरणों में स्थान दीया है--इससे अधिक हमलोगों का और सौभाग्य क्या हो सकता है ? संसारी जीव सब व्रजमाधुरी को क्या जानते थे--और श्रीराधिका के प्रेम को ही क्या समझते थे ? व्रजरस की भजन प्रणाली तो मिलती ही कैसे, यदि आप कलिहत जीवों पर कृपा करके उसका परिचय न कराते ?

स्वरूप--राय महाशय ! ये सब गुप्त बातें थोड़ी धीरे धीरे कहना ही अच्छा है। जानते तो हो, यहाँ भी एक शचीमाता रहती हैं. यदि वे सुनेंगे तो अभी आपके सामने ही कहने लगेंगे--आपलोग और भी अधिक प्रभु को व्याकुल कर देते हैं।

रामानन्द--यह बात आपकी बिलकुल ठीक है। गोविन्ददास वास्तव में शचीमाता की तरस मातृ स्नेह से प्रभु की सेवा करते हैं। प्रभु की यातना देख कर गोविन्द एकबार ही हतज्ञान और व्याकुल हो जाते हैं। सन्मुख देख कर--गोविन्द तो ये आरहे हैं; अच्छा, अब हमलोग थोड़ी देर के लिये यहाँ से चलें--फिर शीघ्र ही लौट कर आना है। गोबिन्द ! तुम अपने प्रभु को सम्हालो, हमलोग जाते हैं, सावधान !

गोविन्द--राय महाशय ! मेरी बात का कुछ बुरा न मानना। आपलोग जिसको व्रजरस कह कर आनन्द प्राप्त करते हैं, मेरी समझ से उसमें केवल आकुलता, केवल अश्रुपात के अतिरिक्त और कुछ नहीं है--मैं इतना नहीं सह सकता।

इसके अनन्तर सब मिल कर श्रीश्रीजगन्नाथदेव के दर्शनों को चल दिये।

रूपानुराग

आषाढ का महीना है। नीलाचल में रथयात्रा के उत्सव का समय सन्निकट है। चारों ओर से यात्रीगण आकर एकत्रित होंने लगे। वंगदेश वासी भक्तवृन्द रथयात्रा से अनेक दिन पूर्व ही आकर श्रीक्षेत्र में उपस्थित हो गये हैं। रथयात्रा दर्शन करना तो इनका केवल उपलक्ष मात्र है—श्रीगौरांगसुन्दर के दर्शनों के लिये ही इनका मन वर्ष दिन तक उत्कंठित रहता है—ये लोग वर्ष दिन तक एक एक दिन गिना करते हैं कि, कब रथयात्रा का समय आवै, और हम लोग नीलाचल चलकर अपने प्राणों के प्राण, आत्मा के आत्मा श्रीगौरांगसुन्दर का दर्शन कर प्राणों की पिपासा शान्त करैं। इसी से ये अन्यान्य देश के यात्रीयों से अनेक दिन पूर्व पुरुषोत्तम क्षेत्र में आकर रातदिन अपने प्राणधन श्रीगौरांगसुन्दर के दर्शन कर प्राणों को शीतल करते हैं। किन्तु इस बार इनको वह सुख प्राप्त नहीं हुआ। पहिले, प्रभु जिस प्रकार इन सब को संग लेकर उत्साह पूर्वक श्रीजगन्नाथ दर्शन करते थे, सर्वत्र नाम संकीर्तन करते थे, सर्वदा हँस हँसकर वार्तालाप करते थे, इस बार वह भाव नहीं है। श्रीमुख पर मानों एक कैसी गंभीर विरह की व्याकुलता है—नेत्रों से सर्वदा अश्रु बहते रहते हैं--वर्ण पीला हो गया है। जनसंग की अपेक्षा निर्जन स्थान ही अधिक प्रिय लगता है--वहिरंग मनुष्य से अत्यन्त आवश्यकता होतो दो एक बातैं करते हैं--फिर क्षणभर में ही मस्तक अवनत कर अश्रुपात करने लगते हैं।

यह अवस्था देखकर भक्तों के प्राणों में किंचित् मात्र भी शान्ति नहीं है। गंभीरा मंदिर के सुवृहत्प्रांगण में भक्तों का पूर्णरूप से समावेश है। नाम संकीर्तन की तरंग भी पूर्णरूप से उठ रहीं हैं। प्रभु कुछ क्षण संकीर्तन में सम्मिलित होकर ही रुदन करते करते गंभीरा मंदिर

के भीतर चले जाते हैं। यद्यपि प्रभु यह बात जानते हैं कि, इससे भक्तों को क्लेश होता है, उनका उत्साह क्षीण होता है, किन्तु इसका उपाय भी क्या है? श्रीकृष्ण के मोहन-रूप की भावमूर्ति प्रभु के हृदय में प्रकाशित होते ही, उनके प्राण उसी रूप दर्शन के लिये व्याकुल हो उठते हैं। इस भाव में ही विवश हो जाते हैं। अपने प्रिय भक्तों पर सब समय समान दृष्टि रखने की सामर्थ फिर नहीं रहती।

भावावेश के अनन्तर जब प्रभु कुछ स्वस्थ होते हैं, तब अति कातर हो, भक्तों से क्षमा प्रार्थना कर कहने लगते हैं—तुम सब इतना क्लेश सह कर यहाँ आये हो, और मैं भी यहाँ वर्ष दिन तक रथयात्रा की आशा आशा ही में रहता हूँ कि, तुमलोग आओगे—सब को सङ्ग लेकर श्रीजगन्नाथ दर्शन करूंगा—नाम सङ्कीर्तन करूंगा—सो तुमलोग तो आ ही गये, किन्तु यह देखो मुझे क्या हो गया है? मेरे प्राण सर्वदा व्याकुल रहते हैं—मेरा मन मेरे बश में नहीं है—अच्छी तरह दो बातैं भी नहीं कह सकता। अति प्रियजन का सङ्ग भी अब नहीं सुहाता। सब छोड़ कर एकान्त में बैठ कर केवल रोता रहूँ, यही इच्छा करती है। चेष्टा करके भी अश्रु सम्वरण नहीं कर सकता। मनमें तो यह विचार करता हूँ कि, अपने भावों को मन ही मन में दवाकर तुमलोगों से हँस हँस कर दोदो बातैं करूँ, किन्तु जभी हँसना चाहता हूँ, तभी रो पड़ता हूँ।

कैसी एक अपूर्व रूपकी झलक मेरे नेत्रों के सन्मुख आकर फिर उसी समय छिप जाती है, तभी मैं व्याकुल हो उठता हूँ। यह बात कहने की नहीं है, और छिपाने की भी नहीं है—वह रूप मेरे चित्त को आकर्षित कर लेता है। वह कैसा सुन्दर, कैसा मधुर है। उसमें कैसी प्रवल आकर्षण शक्ति है?

भक्तवृन्द के सङ्ग आनन्द से नाम सङ्कीर्तन करूंगा—इसी आशा से सब छोड़ कर यहाँ आया—तुम सब कृष्ण भक्त मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो—तुमलोगों को सङ्ग लेकर कृष्ण नाम कीर्तन

करने से मुझे अनिर्वचनीय सुख होता है। सौभाग्य से तुम लोग भी आगये, परन्तु मेरी तो यह दशा है कि, कृष्णनाम कीर्तन करना तो दूररहा, उसके श्रवण मात्र से मेरा मन अधीर हो उठता है। उस समय मन में यही आता है कि, एकान्त में बैठकर उनकी उस भुवन मोहन चितवन का ध्यान करता रहूँ, जिससे वे मेरी ओर न मालूम क्या कुछ इंगितसा कर रहे हैं।

यथार्थ बात तो यह है कि, ठीक ऐसा मालूम होता है मानों वे नेत्रों के इंगित से मुझे बुलारहे हैं और बुलाकर ही कहीं चले जाते हैं। मैं उनके लिये पागल होकर रोता रहता हूँ। वे क्यों ऐसा करते हैं? यह देखो! वे रहे! कहते-कहते आंख फाडकर ऊपर की ओर देखते हुये प्रभु वाह्यज्ञान शून्य हो गये—उनका श्रीअंग वज्र से आहत के समान निस्पंद और निश्चल हो गया।

रामानन्द वसु, शिवानन्दसेन और मुकुन्ददत्त ने जल्दी से पकडकर प्रभु को अपनी गोद में ले लीया। प्रभु का मस्तक मुकुन्द के कंधा पर झुकपड़ा। दोनों नेत्र उसी प्रकार फटे हुये हैं—बाम नेत्र कुछ वक्रसा हो गया है—नयनों के तारे स्थिर और उपर को चढ़े हुये हैं—मुख मण्डल का वर्ण अत्यन्त पीत और रुद्ध हो गया है।

प्रभु की यह दशा देखकर भक्तगण वक्षस्थल पर कराघात पूर्वक रुदन करने लगे। काशीश्वर भक्तों को विनय कर सान्त्वना देने लगे, और उनसे कहने लगे कि "आप लोग प्रभु की यह दशा नहीं देख सकेंगे, अतएव कुछ समय के लिये बाहर के प्रांगण में जाकर खूब उच्चैस्वर से नाम संकीर्तन आरम्भ कीजिये" काशीश्वर के कहने से प्रायः सभी भक्त बाहर के प्रांगण में आकर व्याकुल भाव से एक प्रकार वाह्यज्ञान रहित होकर उच्चैस्वर से नाम संकीर्तन करने लगे।

शिवानन्द प्रभु के मुख की ओर अधिक समय तक नहीं देख-सके—प्रभु की ओर से मुख फेरकर रो रोकर प्रभु के मस्तक पर पंखा

करनेलगे। स्वरूप ने कहा काशीस्वर ! तुम अच्छी तरह प्रभु को सम्हाल कर बैठो, मुकुन्द को अब अवसर दो। इनसे कुछ प्रयोजन है।

काशीश्वर अति यत्न पूर्वक प्रभु को अपनी गोद में लेकर बैठ गये। स्वरूप और मुकुन्द सुमधुर कंठ से कृष्ण नाम कीर्तन करने लगे:

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण, कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण, कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे॥

स्वरूप ने प्रभु की नासिका के सामने रुई लगाकर देखा तो, नासिका से मन्द मन्द श्वास चलता हुआ मालूम हुआ—नेत्रों के तारे भी नीचे को उतर आये हैं— शरीर का उत्तान भाव भी कुछ कम हो गया है। फिर दोनों समस्वर से चेतना के महामंत्र का उच्चारण करने लगे:—

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण, कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण, कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे॥

कुछ ही क्षण के अनन्तर प्रभु के नेत्रों में अश्रुविन्दु और मस्तकपर स्वेदविन्दु दिखाइ देने लगे। देखते देखते अश्रुविन्दु पर अश्रुविन्दु नेत्रों से ढलक ढलक कर गिरने लगे। मुकुन्द ने स्वरूप को इंगित कर दिखाया कि, प्रभु के अधर दोनों ईषत् कंपित हो रहे हैं।

एक भक्त ने जल्दी से बाहर जाकर और भक्तों को यह शुभ संवाद सुनाया कि "अब कुछ चिन्ता की बात नहीं है; प्रभु के श्रीअंग में अब कुछकुछ चेतना के लक्षण दिखाई देने लगे हैं, आप लोग खूब संकीर्तन कीजिये भक्तगण नाम कीर्तन छोडकर और एक नवीन पद गान करने लगे: —

कमल विनिन्दित श्रीमुख शोभा, दीखत मलिन सु आज।
विम्ब विडम्बित अधर राग पुन, मलिन भयो किह काज॥
विरह तापसों भूमि विलोटत, नैन युगल भर नीर।
कनक कांति सम देह मलिन लखि, होत हिये में पीर॥

फाटत प्राण गौरसुन्दर लखि, है अब कहा उपाय।
देहु बताय दयाकर कोऊ, विरह ताप नश जाय ॥

भक्त गण नयन जल से वक्षस्थल सिंचन करते हुए गान कर रहे थे। ज्योंहीं गान समाप्त हुआ कि, भाव में मग्न रामानन्द वसु संकीर्तन दल के मध्य में खड़े होकर गान करने लगे:—

आवहु मम गौर-चन्द्र दीनन हितकारी।
सहचर गल बाहु युगल, डाल होय अतिहि बिकल,
प्रेमसिन्धु मगन भये भक्ति के प्रचारी ॥
लोटत प्रभु धरणि धाय, मुख सौं कछु कहत नाय,
परस सकत नाहिं कोउ पतितन उद्धारी।
हेम वर्ण मलिन भयो, तनहू अति सूख गयो,
देखो नहिं जात गात करुण रुदन भारी ॥
तारे थिर भये नैन, कृष्ण कृष्ण रटत बैन,
छिन हुँ नहिं परत चैन, नाम कर उचारी ॥

अनेकों श्रोता इस गान को सुन कर अधीर हो उठे। पुलक, कम्प, स्तम्भ, अश्रु आदि सात्विक विकारों ने गायक दर्शक सभी के मन को व्याकुल कर डाला। श्रीमंदिर के भीतर स्वयं भाव-मय विग्रह जिस भाव में मग्न थे- बाहर प्रांगण में उन्हीं के प्रिय भक्त गण के उसी भाव-मय कीर्तन में भावरस प्रत्यक्ष मूर्तिमान हो उठा।

धीरे धीरे महाप्रभु में चेतना का संचार होने लगा। प्रभु स्वरूप के गले में बाहु युगल डाल कर मृदुस्वर से कहने लगे- स्वरूप! कैसा अपूर्व दर्शन हुआ- आहा, चमत्कार, चमत्कार- कैसा सुन्दर, कैसा मधुर है।

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभो र्मधुरं मधुरं वदनं मधुरम्।
मधुगन्धि मृदुस्मित मेतदहो मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम् ॥

स्वरूप !–कृष्णरूप की माधुरी, सुधासिंधु समजान ।
सन्निपात की प्यास मन, करन चहत सबपान ॥
दुष्ट विधाता वैद्य नहिं, देत बूंद हू मोय ।
कहाकरूं मम प्राण अब, तडफत निशदिन रोय ॥
कृष्ण अंग लावण्य मधु, अतिशय मधुर सु जान ।
ताहू सों मुखचन्द्र की, सुधा मधुरतर मान ॥
कृष्ण वदन विधु चंद्रिका, मन्द मन्द मुसकान ।
ताहि मधुरतम जान मन, विकशित नलनि समान ॥

आहा, कैसा सुन्दर, कैसा मधुर, कैसा मन मोहन रूप है !

मारःस्वयं नु मधुर-द्युति मंडलं
नु माधुर्यमेव नु मनोनयनामृतं नु ।
वेणीमृजो नु मम जीवितवल्लभो
नु कृष्णोऽयमभ्युदयते मम लोचनाय ॥

स्वरूप ! श्रीपाद विल्वमंगल ने ठीक कहा है- इस रूप को देख कर प्रथम तो यह विचार हुआ कि, यही स्वयं कंदर्प हैं । जो रूप की छटा से त्रिभुवन का शासन करते हैं, मालूम होता है ये वही महा-मादक कामदेव हैं । किन्तु क्षण भर के अनन्तर ही ज्ञान हुआ कि, ये मादक कंदर्प नहीं हैं- इनमें तो पूर्ण माधुर्य विद्यमान है, मानों मधुर द्युति का एक मंडल है । मादक मदन में यह माधुर्य कहाँ ? इसके अनन्तर मन में यह विचार हुआ कि, इनको माधुर्य-द्युति ही क्यों कहा जाय- ये तो स्वयं ही माधुर्य रूप हैं । यही क्यों- ये मन और नयन के अमृत हैं- अनन्तर ज्ञात हुआ कि. ये श्रीराधिका के चित्त चोर, वेणी मोचक, नव किशोर, जीवन बल्लभ, मोहन मुरलीधर, ब्रज जन नयन-रंजन, मदन मोहन श्रीकृष्ण हैं ।

स्वरूप ! सौन्दर्य माधुर्य की विद्युत द्युति को देख कर मैं

न मालूम किस अमृत सागर में मग्न हो गया था, जिसका मुख से वर्णन कर तुम्हें नहीं समझा सकता।

प्रभु का वाक्य समाप्त होते ही अति उत्साह के सहित स्वरूप ने गान आरम्भ कर दिया —

विकशित पद्म तुल्य मुखमण्डल, नयन चपल खञ्जन सम।
मृदु मुसकान माधुरी चूअत, पी, आनन्दित दृग मम॥

महाप्रभु स्वरूप के मुख को कर से आच्छादित कर, गान बन्द कर कहने लगे—स्वरूप! तनक ठहरो! मैं देखलूं!

"बिकशित पद्म तुल्य मुखमण्डल"

और इस पर भी :—

"नयन चपल खञ्जन सम"

नेत्र दोनों खञ्जन के समान चपल हैं। इन चपल नयनों की बाँकी चितवन से ही तो मेरे प्राण खैंचातानी में पड़े हैं। यदि मैं उनके सङ्केत को न समझता, यदि इस प्रकार से वे मेरी ओर न देखते, तो कदाचित् मेरी यह दशा न होती। उनके मुख की मन्दमन्द मुसकान तो मानों अमृत की खान है—

"पी आनन्दित दृग मम"

हाँ अब ठीक हुआ—ठीक—बिलकुल ठीक। मैंने शोचा था कि, तुमको कह कर नहीं समझा सकूंगा—किन्तु तुम समझ गये—और ठीक समझे। अच्छा गाओ! फिर से गाओ। इसके पीछे?

स्वरूप—कुछ नहीं समझा-बिलकुल नहीं समझा—परन्तु गान गा सकता हूँ—सो भी आप ही की कृपा से-उसके पीछे यह है :

श्याम बरन की शोभा सजनी बरनन कर नहिं पाऊं।
इन्द्रनीलमणि कै कुवलयदल के घनपुंज बताऊं॥

अङ्गद वलय किङ्किणी कुंडल माल विराजत गल में।
आभूषण चमकत हैं तनु जिम शशि यमुना के जल में॥
कुञ्चित केश कुसुम दल शोभित मोरमुकुट सिर राजै।
सांवरि सूरत मोहनि मूरत कोटि मदन लखि लाजै॥

स्वरूप का गान समाप्त होते ही गौडदेशीय भक्तवृन्द कीर्तन करते करते बाहर से भीतर के प्राङ्गण में आगये। वर्षा की बाढ़ का जल जिस प्रकार स्थानास्थान का विचार न कर जहाँ उसे जगह मिलती है वहीं से प्रवेश करता है,इसी प्रकार गौडीय भक्तगण इस बात का विचार न कर कि, गम्भीरा मन्दिर के भीतर क्या हो रहा है, अपने प्राणों के देवता भावमूर्ति श्रीगौराङ्गसुन्दर के रूप माधुर्य का वर्णन श्रवण कर, कीर्तनानन्द में मग्न हो, उस श्रीमूर्ति के दर्शनों के लिये भीतर प्रवेश करने लगे।

महाप्रभु भी व्याकुल भाव से खड़े होकर सङ्कीर्तन में सम्मिलित हो नृत्य करने लगे। भक्तगण उनको मध्य में लेकर उन्हीं के माधुर्य का गान गा-गा कर सब मत्त थे। भावमग्न श्रीगौरचन्द्र पहिले तो कुछ नहीं समझे कि, ये क्या गा रहे हैं। कुछक्षण के अनन्तर जैसे ही यह मालूम हुआ कि, ये लोग मेराही कुछ गान कर रहे हैं, तैसे ही दोनों करों से अपने कर्णों को बन्द कर, दाँतों से जीभ को दबाते हुए "कृष्ण कृष्ण" उच्चारण कर, सङ्कीर्तन मण्डली से पृथक् हो, एक ओर खड़े हो गये। और दीनता पूर्वक हाथ जोड़ कर, भक्तों से कीर्तन बन्द करने के लिये अनुरोध करने लगे। भक्तों का कीर्तन भी प्रायः समाप्त हो आया था। सब ने शीघ्र ही गान समाप्त कर पृथ्वी पर पतित हो प्रभु के श्रीचरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया। महाप्रभु अति दीन की भाँति मृदु कण्ठ से कहने लगे—

श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन जगत का मङ्गलमय परमअमृत है—उसमें वृथा बातें शोभा नहीं देतीं—उनके सुनने से भी पाप होता है।

तुम सब मेरे सर्वदा से बन्धु हो—जिससे मेरा हित हो—जिससे मुझे शान्ति मिले—तुम सब उसी कृष्ण कथा को कहा सुना करो—इसके अतिरिक्त मुझे और किसी बात से शान्ति प्राप्त नहीं होती, और न आनन्द ही मिलता है। तुम्हारे सब के संग से मुझे जो आनन्द प्राप्त होता था, वे दिन अब मेरे नहीं हैं। निठुर, मुझको ऐसा पागल बना-देगा, यह मैं स्वप्न में भी नहीं जानता था। क्या करते क्या करता हूँ, क्या बोलते क्या बोलता हूँ—सभी मानों उलटपलट हो गया। मैं यदि तुम्हारा सब का कुछ आदर सत्कार न कर सकूं तो मन में यह विचार मत करना कि, तुम सब में मेरी प्रीति नहीं है। यदि तुम से सब से वार्तालाप न कर एकान्त में पड़ा रहूँ, तो यह मत समझना कि, मैं तुम से उदासीन हूँ। मैं अब अपनी इच्छा के आधीन नहीं हूँ। तुम सब लोग अब दया करके यही आशीर्वाद करो कि. मुझे उसके शीघ्र दर्शन प्राप्त हों।

यह कहकर प्रभु अविरत अश्रुपात कर रोदन करने लगे। भक्त-गण प्रभु को रोदन करते हुए देख, व्याकुल हो उठे और सब के सब भूमि में लोटकर विलाप करने लगे। रामराय और स्वरूप ने सब को सान्त्वना देकर शान्त किया। बडी कठिनता से सब शान्त और स्वस्थ हुये।

प्रभु प्रसन्न होकर कहने लगे आज दो रामानन्द एक सङ्ग प्राप्त हुए हैं—राय रामानन्द और वसु रामानन्द। वसु रामानन्द कुलीन-ग्रामवासी हैं—कुलीन ग्राम भक्ति का पवित्र क्षेत्र है।

कुलीन-ग्राम को श्वान हूं, अति प्रिय मोय जनात।
जिनको हरि में प्रेम दृढ, है उनकी का बात॥
कुलिन-ग्राम के भाग्य की, सीमा कही न जाय।
रहत मगन डोमहुँ जहां, कृष्ण नाम गुण गाय॥

वसु रामानन्द भक्ति से गद्गद् होकर कहने लगे—दयामय! यह तो आप ही का अनुग्रह है।

महाप्रभु कहने लगे- राम वसु ! मन में ऐसा प्रतीत होता है कि, तुम्हारे मुख से गान श्रवण किये बिना अनेक युगयुगान्तर व्यतीत हो गये। तुम्हारा रूपानुराग का पद मैं अभीतक नहीं भूला हूँ, वही. "सखी मैं मरत श्याम की प्रीत"। स्वरूप ! रामवसु का यह पद अति मधुर है- तुम भी याद करलो।

स्वरूप— अच्छी बात है। वसु महाशय ! आपका रचित यह गान हम लोग भी सुनना चाहते हैं।

रामानन्द वसु ने लज्जित होकर मस्तक नीचा कर लिया।

स्वरूप ने कहा—इसमें लज्जा की क्या बात है ? और जब कि, प्रभु की आज्ञा है। वसु महाशय ने और कुछ न कहकर, मस्तक अवनत कर मृदुस्वर से गान आरंभ कर दिया, संग में सुगायक मुकुन्ददत्त भी गाने लगे :—

सखी मैं मरत श्याम की प्रीत।
वयस किशोर मनोहर मूरत, तन मन लीयो जीत॥
श्याम सेलसम हिय में पैठो, भइ तासों भयभीत।
निकसत नाहिं जतन किये हू, जारत तन विपरीत॥
नहिं विसरत मन काविध विसरूं, देहु बताय सुनीत।
निशदिन अब पछिताय मरत हूं, कर ऐसे कू मीत॥

महाप्रभु वक्षस्थल पर करधर, मस्तक अवनतकर गान श्रवण कर रहे थे। नयनयुगल से वृष्टधारा के समान अश्रुमाला प्रवाहित हो रही थी। स्वरूप और रामानन्द विस्फारित नेत्रों से वसु महाशय के मुख की और एक दृष्टि से देख रहे थे। गायक के नेत्र दोनों अश्रुपूर्ण हो गये, कंठ गद्गद् हो गया। मुकुन्ददत्त गान की तान लेकर गा रहे थे, किन्तु वे भी अपना कंठ स्थिर नहीं रख सके--कुछ क्षण के लिये सभी मौन हो गये।

कुछक्षण के अनन्तर महाप्रभु मस्तक उत्तोलन कर मृदु स्वर से बोले- इसके अनन्तर ?

रामानन्द अश्रु मार्जन कर, एक दीर्घ निश्वास लेकर वाष्परुद्ध कण्ठ से पुनः गान करने लगे :--

हौ त्रिभङ्ग धर अधर मुरलिया ठाड़ो कर बाँकी चितवन।
हाथ नचाय कहीं जो बातैं सो अबहु नहिं विसरत मन॥
कछू सुहावत अब नहिं मोकूं भई तीनतेरह सजनी।
मनहि मन मैं मरत आपने जान परत नहिं दिन रजनी॥

वसुरामानन्द ने गान की अन्तिम तान को इस प्रकार से समाप्त किया कि, उसकी झङ्कार ने श्रोताओं के हृदय में भाव की तरङ्गों का सञ्चार कर दीया।

महाप्रभु कहने लगे— रामवसु ! योगीगण भगवत्प्राप्ति के लिये योग-क्रिया किया करते हैं, अभ्यास द्वारा चित्त की एकाग्रता और तन्मयता का साधन करते हैं— उसमें अनेक स्थल ऐसे हैं, जिनमें प्राणों का आकर्षण नहीं होता— चित्त के उपर अस्वाभाविक बल प्रयोग कर उसको भगवान् की ओर लगाना पड़ता है, किन्तु मन स्वभाव से ही चञ्चल और बलवान है। योगी कितना भी बल प्रयोग क्यों न करैं, किन्तु अनेक समय चित्त अभीष्ट लक्ष्य की ओर नहीं जाता। जिस प्रकार दुष्ट अश्व अश्वारोही की इच्छानुसार चलना नहीं चाहता, और यदि अधिक ताड़ना की जाय तो हठ करने लगता है, अपने चालक को नीचे गिरा देने का प्रयास करता है; इसी प्रकार दुष्टचित्त भी योग के वशीभूत होना नहीं चाहता, उलटा, और भी विपरीत हो जाता है।

किन्तु व्रजबालाओं का भाव तो देखो—प्राणों का कैसा स्वाभाविक आकर्षण है ! "मन ही मन मैं मरत आपने, जान परत नहिं दिन रजनी"।

धन्य श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी और धन्य ब्रजगोपियों का प्रेम गाणों में स्वाभाविक आकर्षण न होने से मधुमय श्रीभगवान् के साथ संवन्ध संघटित नहीं होता। केवल ब्रजरस में ही यह संबंध परिस्फुट होता है दिनरात श्रीकृष्ण स्मरण होता है:—

रैनदिवस कब होत है, जान परत नहिं मोय।
सोवत जागत श्याम को, रूप प्रकाशित होय॥

रूप का आकर्षण—बड़ा प्रवल आकर्षण है।

रामानन्द—यह जो इस जड़ जगत में श्रीभगवान् अवतीर्ण हो कर अपना भुवन-मोहन रूप प्रकाशित करते हैं, उसका उद्देश यही है कि, अपने भक्तों के चित्त को अधिकतर आकर्षण करना और उनको आनन्द प्रदान करना। यह लक्षण देख कर ही स्वयं भगवान् का अवतार जाना जाता है। श्रीकृष्ण अपना रूप देख कर आप ही मोहित हो जाते हैं। मदन को मोहित करने के कारण जिनका नाम मदनमोहन प्रसिद्ध हुआ है—उनके रूप के आकर्षण से चित्त सहज ही में उनके चरणों की ओर आकर्षित होता है।

महाप्रभु—यही तो मालूम होता है—रूपानुराग एक महा साधन का फल है।

रामानन्द—किन्तु यह एक दुख का विषय है कि. सभी उस मदनमोहन रूप को नहीं देख सकते। ब्रजवासियों ने श्रीकृष्ण के जिस रूप का दर्शन किया था—कंस उस रूप के माधुर्य से आकर्षित नहीं हुआ। कंस के मन में वही रूप यमराज के समान भयङ्कर प्रतीत हुआ। इसके अतिरिक्त स्वयं ब्रज में भी दर्शन-भेद कुछ कम नहीं है। स्नेहमयी माता यशोदा का वात्सल्य भाव से श्रीकृष्ण रूप दर्शन और मधुर भाव से रसास्वादन करने वाली ब्रजवधुओं का श्रीकृष्ण रूप दर्शन पृथक् पृथक् है—किसी के लिये वालगोपाल स्नेह के भाजन और किसी के लिये मदनगोपाल मधुरा-रति के उपास्य,

मधुरोज्वल शृङ्गार रसामृत मूर्ति हैं। भाव भेद से ही रूप भेद है--इसी से अनेक तारतम्य है।

महाप्रभु--हिरण्यकशिपू के भाव को तो देखो! कैसा भीषण है; उसके लिये भगवान् को नृसिंहरूप धारण करना पड़ा।

रामानन्द--हां प्रभु ठीक है,परन्तु वह कितना भी भयंकर क्यों न हो, था तो भगवान् के रूप का प्रकाश। निर्विशेष ब्रह्म वादियों के दुर्भाग्य को तो देखिये, उनके ज्ञान में तो श्रीभगवान् के किसी रूप का भी प्रकाश नहीं है।

महाप्रभु—दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है? जो लोग सविशेष ब्रह्मवादी हैं वे भी यह जानते हैं कि ब्रह्म "सत्यं शिवं सुन्दरं" है. जीव और जगत् में ब्रह्मशक्ति ही का विकाश है। जिसकी शक्ति के विकाश मात्र से ही जड जगत् में अनन्त सौन्दर्य माधुर्य व्याप्त है—न मालूम वह कितना सुन्दर और मधुर है। सविशेष ब्रह्म वादियों में एक श्रेणी के लोग. जगत् के सौन्दर्य और माधुर्य को देखकर ही ब्रह्म के सौन्दर्य माधुर्य का अनुमान करलेते हैं। जगत् का सौन्दर्य जिस मनुष्य के नयन गोचर होता है वह आकाश की नीलआभा में, रात्रि के चन्द्रमा में, पक्षी की पंखों में, और पुष्प की सुगन्धि में सौन्दर्य-माधुर्य का प्रत्यक्ष अनुभव करता है। यह सौन्दर्य-माधुर्य कहां से आया, वायु में किस की सुगन्ध उडकर आरही है, अनन्त किरण जाल में किसका रूप नेत्रों के सामने नाच रहा है—किंचित् मात्र विचार करने से ही मनुष्य अपने हृदय में इस रहस्य का आभास प्राप्त करलेता है। किन्तु यह सुन्दर जगत् जिस चिरसुन्दर की लीला है, उस गोपीगण हृदयरंजन श्रीश्यामसुन्दर के सौन्दर्य-माधुर्य का साक्षात्कार करना वास्तव में अत्यन्त दुर्ल्लभ है।

रामानन्द हां प्रभु! एकश्रेणी के पंडितों के सिद्धान्त में तो प्रायः श्रीरूप साधन का माधुर्य अत्यन्त दूर चला जाता है। वे लोग

कहते हैं कि, ईश्वर अनन्त असीम और सर्वव्यापी है। सो ये सभी बातें सत्य हैं। किन्तु इन सब भावों को हृदय में रखकर साधना करने वैठा जाय तो, रूप के साधन तक को चित्त में स्थान प्राप्त नहीं होता; रूपानुराग की तो बात ही दूसरी है। मैं ससीम होकर क्या असीम को प्राप्त कर सकता हूँ ? मैं क्षुद्र होकर क्या अनन्त से संबंध कर सकता हूँ ? अनन्त अनन्तरूप से व्याप्त है, मैं किस प्रकार से उसे आकर्षित कर अपना बनाऊं ? इनके मन में यही संदेह सर्वदा बना रहता है।

"ब्रजांगनाओं का रूपानुराग सिद्धावस्था का भी चरम फल है" यह विश्वास उक्तश्रेणी के साधकों के हृदय में बिलकुल ही नहीं है। एकदिन नरेन्द्रसरोवर के घाटपर एक शुष्कज्ञानी सन्न्यासी का हृदय, हमारे स्वरूप पंडित का गान श्रवण कर द्रवीभूत हो गया। वे कहने लगे कि "जो ऐसे सुन्दर हैं, ऐसे मधुर हैं, उनको यदि हृदय के सखा, प्राणों के प्रियतम एवं प्राणवल्लभ कहकर पुकारने का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ तो, साधन में सुख ही क्या है ? ऐसे सुन्दर, ऐसे मधुर, ऐसे सरस हैं ! वे रूप रहित निराकार हैं, यह कैसा भीषण सिद्धान्त है। इस हृदय में प्रीति का श्रोत अविरत रूप से प्रवाहित हो रहा है – सौन्दर्य-माधुर्य-के आस्वादन करने की वासना भी निरन्तर प्रवलवेग से चल रही है। यह तो अभीतक ज्ञान ही नहीं हुआ कि—संसार की समस्त वस्तुओं में उसी सौंदर्य की प्रभा उसी माधुर्य की आभा प्रकाशित हो रही है। उसी ब्रह्म से ही इस सुन्दर-मधुर जगत् की उत्पत्ति है। जो आनन्दस्वरूप और रसस्वरूप हैं, उन्हें अरूप और निराकार कहा जाता है ! धन्य है ! इस प्रकार की भाव साधना को दूर से ही नमस्कार है" यह कहकर ही सन्न्यासी स्वरूप के चरणों में गिरपडे।

महाप्रभु—यह तो कोई बड़ा भाग्यवान पुरुष है। हां, इसके पीछे क्या हुआ ?

रामानन्द—इसके पीछे उनके संग के और सब सन्न्यासी उनसे तर्क वितर्क करने लगे। वे सब को शास्त्रीय तर्क से परास्त कर कहने लगे—तुमलोग अपने ज्ञान को लेकर जितने समय तक निर्विशेष ब्रह्म का विचार करते रहोगे, शुष्कज्ञान की मरुभूमि में जलभुन कर दग्ध होते रहोगे, मैं उतने समय इन प्रेमिक भक्तों का सुधामय संगीत श्रवण कर श्रीभगवान् का साक्षात् सुन्दर स्वरूप सन्दर्शन कर आनन्द-सुधा में निमग्न रहूँगा। तुमलोग इस ज्ञान के प्रकाश को लेकर मुझ से पृथक् ही रहो उस से अपनी दृष्टि जलाकर नेत्रों की दिव्य दर्शन-शक्ति का नाश करते रहो। भक्तों के भगवान् अपने देह की दिव्य-मधुर-ज्योति से ही प्रियतम भक्तों के सन्मुख आत्मरूप प्रकाश करते हैं। उस रूप का दर्शन कर वे लोग सर्वदा आनन्दरस में निमग्न रहते हैं। तुम लोगों का ज्ञान दिव्य ज्ञान नहीं है। मनुष्य का ज्ञान तर्क निष्ठज्ञान है, जो संकीर्ण और सीमावद्ध है। रूपानुराग के गान को श्रवण कर जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसके आगे यह ज्ञान तुच्छ है—उस से भी निकृष्ट है—इसे एक प्रकार का अंधकार ही समझना चाहिये। तुम लोगों का यह ज्ञान जब अपनी सीमा को उल्लंघन करता है तब असत् कल्पना में मिलकर आत्मविस्मृत हो जाता है।

तुम लोगों के शुष्क तर्क ने तुम सब को मरुभूमि में डाल रखा है। किन्तु ये भक्तगण सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण के रूपसागर की एक विन्दुसुधा को ही प्राप्त कर परम कृतार्थ हो जाते हैं। मुझे भली भांति अब ज्ञात हो गया है कि, साधन का यही परम पुरुषार्थ है।

तुमलोग इसको अन्ध विश्वास कहते हो, अज्ञान और कुसंस्कार कहते हो, किन्तु इस अन्ध-विश्वास के बल से जो श्रीभगवान् के भुवनमोहन रूपानुराग में मत्त होकर, उन रसस्वरूप श्रीभगवान् के सौन्दर्य, माधुर्य का आस्वादन कर सकते हैं, मैं उन्हीं को महापुरुष मानता हूँ। मुझे अब इसी प्रकार के एक महापुरुष प्राप्त हो गये हैं, मैं अब तुम्हारे तर्कवितर्क के झंझट में नहीं रहूँगा।

महाप्रभु किंचित् हँसकर कहने लगे यह शुभ लक्षण है उद्देश सफल हो रहा है। अच्छा तो, रामराय ! इसके अनन्तर ?

रामानन्द—इसके अनन्तर वे शुष्कज्ञानी सब हमारे स्वरूप पंडित को चारों ओर से घेरकर बैठ गये, और कहने लगे—पंडितजी ! कृपाकर इस रसब्रह्म साक्षात्कार का एक गान और भी सुनाना होगा। स्वरूप पंडित ने गंभीर भाव से कहा—श्री श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की चरणरज प्राप्ति से पूर्व, मनुष्य इस गान के सुनाने का अधिकारी नहीं होता। तुमलोग प्रथम उनकी चरणरज पाने के अधिकारी बनो, उसके अनन्तर यह गान श्रवण कर सकोगे।

इसके अनन्तर वे सब सन्न्यासी हम लोगों के साथ साथ यहां आकर आप की श्रीचरणरज में अपना तनमन सब समर्पण कर गये हैं।

महाप्रभु किंचित् अप्रसन्न होकर कहने लगे—रामानन्द ! श्रीगंगा के पवित्र प्रवाह में कूपजल मिलाने की क्या आवश्यकता है ? तुम केवल रूपानुराग की बातें ही कहो !

रामानन्द मस्तक अवनत कर कहने लगे—प्रभो ! आपके चरण दर्शन से पूर्व मुझे इन सब बातों का कुछ भी परिज्ञान नहीं था। परन्तु श्रीभगवान् के रूप में अनिर्बचनीय शक्ति है, यह बात बहुत दिन पहिले से ही सुन रखी है। बाल्यकाल का अभ्यास किया हुआ एक श्लोक आज बहुत दिन में स्मरण आया है। मैं जब अत्यन्त बालक था, तब मेरे पूज्य पिता अनेक ग्रन्थों से उत्तम-उत्तम श्लोकों का संग्रहकर मुझे कंठस्थ कराया करते थे। उसी समय के एक पद्य का अर्थ मेरे हृदय में अब क्रमशः अधिकतर उज्वल होता जा रहा है। यह श्लोक महा नाटक का है इस एक श्लोक में ही प्रश्न और उत्तर दोनों हैं। कुम्भकर्ण ने रावण से पूछा—

आनीता भवता यदा परिणिता साध्वी धरित्री सुता,
स्फूर्ज्जद्राक्षसमायया नच कथं रामांग मंगी कृतम्।

भूमिसुता सीतादेवी विवाहिता थीं, अति साध्वी थीं, और श्रीरामचन्द्र के अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष उनका वरणीय नहीं था—तब ऐसी अवस्था में राक्षसी माया से रामरूप धारण कर कार्य करते तो कार्यसिद्धि में किसी प्रकार की वाधा उपस्थित नहीं होती, सो तुमने ऐसा क्यों नहीं किया ?

इसके उत्तर में रावण से एक महा सत्य का प्रकाश होगया। उसने कहा—भाई ! यह युक्ति मेरे मन मेंभी आई थी, और मैंने इसीके अनुसार कार्य करने का यत्न भी किया, किन्तु उसका परिणाम विपरीत हुआः—

कर्त्तुं चेतसि रामरूपममलं दूर्वादल श्यामलं।
तुच्छं ब्रह्मपदं परं परवधुसंगप्रसँगकुतः ॥

जो रूप धारण किया जाता है पहिले उसका ध्यान करना पड़ता है। मैंने रामरूप धारण करने की इच्छा से जैसे ही उस दूर्वादलश्याम रामरूप का ध्यान करना चाहा, वैसे ही परंपद अर्थात् ब्रह्मपद पर्यन्त मुझे तुच्छ ज्ञात होंने लगा—परवधु-संग का प्रसंग तो महा निकृष्ट कर्म है। प्रभो ! आप की चरणरेणु प्राप्ति के अनन्तर से तो इस श्लोक का मर्म वहुत ही अच्छी तरह से समझ में आगया है। श्रीभगवान् के रूप ध्यान की ऐसी ही शक्ति है।

महाप्रभु— वास्तव में तो रामराय ! रूपानुराग का मर्म ठीक-ठीक तुमने ही जाना है। रूपानुराग के होमानल से तुम्हारा हृदय सर्वदा से शुद्ध, पवित्र एवं विशुद्ध रसमय है। तुम्हारे हृदय ने प्राकृत विषयानुराग को परित्याग कर श्रीभगवान् के मधुर रूपानुराग को ही स्वीकार किया है, इसीसे तुम निर्विकार हो; एकमात्र इसी औषधि से इन्द्रिय लालसारूप काला सर्प त्रिकाल भी तुम्हारे समीप नहीं आसकता। मैं सर्वत्यागी सन्न्यासी होकर भी तुम्हारे समान अधिकारी नहीं हूँ।

रामानन्द असन्तोष का भाव दिखाते हुये हाथ जोड़कर कहने लगे—प्रभो ! यदि दास को प्रत्येक बात में ही इस प्रकार लज्जित किया करेंगे तो, मैं यही उचित समझता हूँ कि, मेरा श्रीचरणों के समीप मौन होकर रहना ही उत्तम है ।

स्वरूप किञ्चित् हंसकर कहने लगे—रायमहाशय ! प्रभु ने क्या अनुचित कहा ? जो महापुरुष निर्विकार चित्त से युवती देवदासियों को ब्रजभाव की शिक्षा दे सकता है, उस के समान संसार में हमको तो कोई दूसरा मनुष्य दिखाई नहीं देता। प्रभु ने यथार्थ ही कहा है:—

केवल रामानन्द को, है रस में अधिकार।
अप्राकृत है तासु तन, होत न कबहु विकार ॥

इस प्रकार न होने से क्या कोई ब्रजरस का अधिकारी होसकता है ? प्रभु जो आपके द्वारा रूपानुराग के तत्त्व को प्रकाश करा रहे हैं-सो वास्तव में आप ही इस कार्य के उपयुक्त पात्र हैं। साक्षात् श्रीमदन-मोहन का रूप जिसके हृदय में निरन्तर प्रकाशित होता रहता है, वही ब्रजरस के भजन का अधिकारी है ।

रामानन्द ने मस्तक अवनत कर दौनोंकरों से कर्ण वन्द कर लिये और मौन होकर वैठगये ।

प्रभु ने गंभीर भाव से कहा—रामराय ! मैंने उचित बात ही कही है। स्वरूप मेरी बात को भली भांति समझ गये। भक्तगण सब तुम्हारे मुख से ही रूपानुरागमयी श्रीकृष्ण कथा श्रवण करना चाहते हैं। जो लोग ब्रजरस से रूपसाधन की कामना करते हैं, उनको तुम्हारी तरह इन्द्रिय लालसा लेश शून्य होना पड़ेगा। अर्थात् आत्मे-न्द्रिय सुख वाञ्छा का परित्याग करना पड़ेगा, तव इन सब वातों के श्रवण करने का अधिकार प्राप्त होगा ।

गौडीय भक्तगण ने वड़े विस्मय से श्रीश्रीमहाप्रभु के इस गंभीर उपदेश को श्रवण किया। उन सब के हृदय में एक बड़ा विप्लव

उपस्थित हो गया। किसी किसी के हृदय में तो अनुताप की अनल प्रज्वलित हो उठी। क्षण भर के लिये सभी मौन हो गये।

इसके अनन्तर महाप्रभु कोमल मधुर कण्ठ से कहने लगे:— रामराय ! अनेक कारणों से मैं अब अधिक समय तक जन समूह में उपस्थित नहीं रह सकता। यहाँ अनेक प्रकार की बातें उठती हैं। श्रीकृष्ण कथा में बाधा पड़ती है। अन्य विषयों में राग के रहते पूर्व-राग या अनुराग की बात करना केवल परिहास मात्र है। सब के हृदय में श्रीभगवान् के रूप का प्रकाश होना असम्भव है। सूर्य की किरणें सर्वत्र ही पड़ती हैं; किन्तु स्फटिक में वे प्रतिविम्बित होकर जितनी, नेत्रों को आनन्द देने वाले विविध वर्णों की विचित्रता के कारण सुन्दर दिखाई देती हैं, मृत्तिका में उनका वैसा प्रकाश होना असम्भव है। महाभारत के मोक्षधर्म में लिखा है:—

नशक्यः स त्वया द्रष्टु मस्माभिर्वा वृहस्पतेः।
यस्य प्रसादं कुरुते सत्रै तं द्रष्टु मर्हति॥

यदि वे कृपा करके स्वयं दर्शन न दें तो हम लोगों की बात तो दूर रही, देवगुरु वृहस्पति भी उनके दर्शन नहीं कर सकते।

श्रीभगवान् के रूप का दर्शन-अनन्त साधनों का फल है। प्राकृत नेत्रों से उनका दर्शन करना असम्भव है। वे अपनी निजकी प्रकाश शक्ति के द्वारा अपनी इच्छा से ही भक्तों के दृष्टि गोचर होते हैं।

ततः स्वयं प्रकाशत्व शक्त्या स्वेच्छा प्रकाशया।
सोऽभिव्यक्तो भवेन्नेत्रे न नेत्र-विषयत्वतः॥

श्रीभगवान् अजन्मा होकर भी जन्म ग्रहण करते हैं। जन्म का अर्थ और कुछ नहीं है. लीला के समय सबके दृष्टिगोचर होना ही जन्म है। वे सर्वव्यापी होकर भी परिच्छिन्न से प्रतीत होते हैं। उनमें अचिन्त्य शक्ति होने के कारण इस परिच्छिन्नता से उनकी

व्यापकता में कुछ भी बाधा नहीं आती । जिनके भीतर और बाहर, इधर और उधर सब समान है, उनकी सर्व व्यापकता और परिच्छि-न्नता केवल लौकिक प्रतीति मात्र है। उनका प्रभाव अचिन्त्य है। वे अपनी इच्छा से आप ही प्रकाशित होते हैं। उनमें सभी विरुद्ध धर्म वर्तमान हैं। उन्हीं की कृपा से ज्ञानी ब्रह्म वादी गण इस तत्व को जान सकते हैं।

रामानन्द—दयामय ! रूप के साधन से चित्त जैसा श्रीभगवान् में अभिनिविष्ट होता है; अन्य और किसी साधन से वैसा नहीं होता। ब्रजरस के साधन में रूपानुराग एक प्रबल सहायक है। श्रीभगवान् का मधुर रूप अपने निज प्रभाव से ही साधक के चित्त को उनके श्रीचरणों की ओर आकर्षित कर लेता है उस समय यह अवस्था होती है :—

बिसरन चाहत हूं बहुतेरो, पर बिसरो नहिं जाय।
देहु बताय दया कर सजनी, जो कछु होय उपाय॥

महाप्रभु—वह एक विषम ज्वाला है। कवि ने श्रीमती राधिका की उक्ति के रूप में यथार्थ ही कहा है—

मैं चाहत हूं छांड़बो, वह नहिं छांड़त मोय।
कछु उपाय सूझत नहिं, अब कैसे का होय ?

रामराय ! शेष में इस रोग की औषधि ढूंढने पर भी नहीं मिलती—इस में केवल अश्रुपात, केवल हाहाकार होता है। रूपानुराग के परिणाम की दशा तो यह है।

महाप्रभु की बात समाप्त होते ही, उनके मन का भाव समझ कर स्वरूप भावाविष्ट हो, कुछ दहना हाथ उठा कर मधुर कण्ठ से गान करने लगे :—

अतसी कुसुम समान श्याम रङ्ग तनकहु जो कहुं देख परै।
तो तज काज, लाज, कुलकामिनी श्याम प्रेम में अबस मरै॥

खान पान में रुचि नहिं तनकहु नींद नहीं नैकहु आवै।
धड़कत हीयो निश दिन वा बिन घर अब तनकहु नहीं भावै॥
छिन छिन प्रान होत उच्चाटन विरह अनल तापत तनकूं।
ह्वै है का परिनाम श्याम नें मोह लियो मेरे मनकूं॥

स्वरूप के भावपूर्ण गान को श्रवण कर भक्तों के हृदय में महाभावमयी श्रीराधिका के रूपानुराग का भाव-चित्र उज्वल रूप से प्रस्फुटित हो उठा। रामानन्द कहने लगे—प्रभु रात दिन अनेक बातें कहते हैं तो भी स्वरूप के गान के समान मधुर नहीं होतीं। ब्रजरस को मूर्तिमान् कर के दिखा देने में केवल स्वरूप पण्डित का गान ही समर्थ होता है। उस दिन मेरे पिता (भवानन्दराय) रासलीला के एक श्लोक की व्याख्या कर रहे थे ; वह श्लोक यह है :—

का स्त्र्यङ्गते कलपदायत वेणुगीतं,
सम्मोहिताऽर्य्ये चरितान्नचलेत् त्रिलोक्याम्।
त्रैलोक्यसौभग मिदं च निरीक्ष रूपं,
यद्गोद्विजद्रुममृगा पुलकान्यबिभ्रन्॥

अर्थात्—हे कृष्ण! तीनों लोक में ऐसी कौनसी स्त्री है जो आपके कलपदायत वेणु गीत से मोहित होकर और त्रैलोक्य के सौभाग्य स्वरूप इस रूप को देख कर अपने धर्म से विचलित न हो। क्यों कि आपके वेणु गीत से और माधुर्य से मृग, पक्षी एवं वृक्ष पर्यन्त पुलकित हो जाते हैं।

स्वरूप पण्डित वहाँ उपस्थित थे। ये भी उसी समय गान गाने लगे :—

मरकत मणि सम वदन सुशोभित मुखरित-मुरली-गीत।
पशु पक्षी सुन पुलकित, यमुना वहन लगी विपरीत॥

जैसे इन्होंने गान आरम्भ किया कि वैसे ही उसके स्वरों की झङ्कार के सङ्ग सङ्ग यह मालूम होने लगा कि, हमलोग मानों ठीक यमुना तट की व्रज निकुञ्जों में उपस्थित होकर उस मरकत-मञ्जु-मुकुर-मुखमण्डल का दर्शन कर और मुखरित मुरली गीत श्रवण कर विह्वल हो गये हैं। स्वरूप पण्डित का गान तो गान नहीं है। वह तो मानों ब्रजरस मूर्ति प्रदर्शन का महामन्त्र है। मैं अधिक आपसे क्या कहूँ प्रभो! इनका गान आश्चर्य अति आश्चर्य है। मेरे पिता गान श्रवण कर विह्वल होकर इनके चरणों में गिर पड़े, और रुदन करने लगे। स्त्री सब हा कृष्ण! हा कृष्ण! कह कर अधीर हो उठीं। उस समय हमलोग कुछ क्षण के लिये कैसे एक अपूर्व भाव में डूब गये थे, उसे वाणी से कह कर समझाना अत्यन्त कठिन है।

महाप्रभु कहने लगे—एक तो स्वरूप का गान उस पर भी श्रीकृष्ण के सौन्दर्य माधुर्य के वर्णन की कविता।

कृष्णचन्द्र माधुर्य में, है गुण एक विशेष।
देखत ही मोहित करै, नर औ नारि अशेष॥

फिर गान का स्थान, राय भवानन्द का भक्ति भवन। इस प्रकार के गंगा यमुना के सम्मिलन से सुमधुर ब्रजरस की तरंगें अवाध रूप से उठने लगीं, इस में विचित्रता ही क्या है?

स्वरूप—प्रभो! स्थान के महात्म्य से क्या नहीं हो सकता है? श्रीभगवान् के चरणस्पर्श से कूप जल भी चरणामृत होजाता है इसमें हमारा पुरुषार्थ ही क्या है?

इधर गौडीय भक्त गण कृष्ण कथा और रसकीर्तन श्रवण कर आनन्द में ऐसे मग्न होगये कि, उनको यही नहीं ज्ञात हुआ कि, इतना अधिक समय किस प्रकार से अतिवाहित हो गया। शिवानन्दसेन श्रीमहाप्रभु की अवस्था को अच्छी तरह जान गये—गंभीरा मन्दिर के पास इतने मनुष्यों की भीड़ होना उचित नहीं है, यह सोचकर भक्तों

के सहित प्रभु के चरणों में प्रणाम कर विदा होने की आज्ञा माँगने लगे।

प्रभु ने कहा—"तुम लोगों के संग एकत्र रहकर मुझे कितना सुख होता है, यह तुम सब जानते हो। किन्तु इस समय मेरी यह अवस्था है, इसलिये तुम सब मुझ पर कृपा दृष्टि रखना" कहते कहते प्रभु के दोनों नेत्र अश्रुजल से परिपूर्ण हो गये। शिवानन्द प्रभु की ओर देखकर अश्रुपात करते हुए गौडीय भक्तों के सहित वासस्थन को लोट आये।

स्वरूप और रामानन्द भी प्रभु से विदा मागने को तयार हुये ही थे कि, प्रभु ने कहा—ठहरो, एक साथ ही सब मुझे छोड़ कर मत जाना। वहुजन संग से भी मुझे कष्ट होता है, और जनसंग शून्य रहकर भी मुझे कष्ट होता है। कृष्ण माधुर्य की बात उठते ही मेरे हृदय में ऐसी तरंगैं उछलने लगती हैं, जिन्हें मैं किसी तरह सहसा सम्बरण नहीं कर सकता।

कष्णमाधुरी कृष्ण को, उपजावत है लोभ।
ताहि स्वाद में नहिं सकत, होत मनहिमन छोभ॥ ७८

स्वरूप! रूपानुराग के पद तो नित्य ही नवीन प्रतीत होते हैं। मानों वे प्राचीन होते ही नहीं हैं। तुमने एक दिन जो एक गान गाया था "वह रूप टरत नहिं टारे हिय सों सजनी" मेरे प्राणों में अभी तक खटक रहा है।

रामनन्द कहने लगे—ज्ञात होता है यह पद मैंने नहीं सुना।

स्वरूप तत्क्षण ही गान गाने लगेः—

घनश्याम वदन पै पीत वसन साजत है।
मानहुँ थिर दामिनि संग जलद राजत है॥
सिर मोर मुकुट गलमालतो माल सुशोभित।
गुंजार करत चहु दिश मधुकर मद लोभित॥

वह रूप टरत नहिं टारे हिय सों सजनी ।
मम नशी सकल कुल कान विकल दिनरजनी ।।
मुखचन्द्र सुधा में मगन रहत दृग मेरे ।
गुरु जन की लाज जरावत प्रान घनेरे ॥
हैं बस्तु जगत में जितनी मधुर मनोहर ।
सब न्योछावर हैं कृष्णचन्द्र मुखऊपर ।।
दृग चहत, रहूं मैं सदारूप रस पीवत ।
बिन देखे पिय के पलहु प्रान नहिं जीवत ।।

गान समाप्त होते ही महाप्रभु रुदन करते करते कहने लगे—रामराय ! सन्निपात ज्वर के तृषित रोगी की तरह मेरी कैसी दुर्दशा हो गई है, सो मैं कुछ कह नहीं सकता । मैंने कभी श्रीमती राधिका के भाव—आस्वादन का वर्णन करते हुए कहा थाः—

रूप सुधा रस मधुर को, करत सदा जो पान ।
प्यास मिटत नहिं तनकहू, निशदिन बढत महान ।।

स्वरूप के मुख से और भी एक पद सुना था:—

निरखत श्याम जनम बीतो सखि, तृप्त भये नहिं नैन ।
कानहुं तृप्त भये नहिं सजनि, सुनत सुनत मृदु बैन ।।
कितनी रात विताई सुख सों, जानी नहिं रस केल ।
लाखन युग हिय में हिम राखो, मिटो न हिय को सेल ।।

इसी भाव के आभास में मेरा मन रातदिन विकल रहता है । ब्रजबालागण श्याम रूप दर्शन कर कभी भीं परितृप्त नहीं होती थीं; वे जितना दर्शन करती थीं उनकी उतनी ही अधिक तृष्णा बढ़ती थी । इस प्रकार उनको बिना दर्शन के निमिषकाल भी असह्य हो जाता था । वे कहा करती थीं:—

कोटि नैन दिये नहिं, द्वै हू दिये निकाम।
उनहुँ में पलकैं दई, का विधि निरखूँ श्याम ॥

स्वरूप महाप्रभु के मुखारविन्द की ओर निरीक्षण कर कहने लगे—प्रभो! इस समय एक पद और स्मरण हो आया है। आप और रामराय दोनों ही इस गान का आस्वादन करें।

महाप्रभु अत्यन्त आग्रह पूर्वक कहने लगे- हाँ गाओ, स्वरूप! गाओ! अमृत से क्या कभी अरुचि होती है ? क्या कहते हो राम-राय ?

राम राय— हां प्रभु! मन में तो यही कामना रहती है कि, रात दिन स्वरूप पंडित का गान ही सुनते रहा करें। लोग तो गान श्रवण करते हैं— और मैं केवल गान ही नहीं श्रवण करता हूँ-मैं उस समय गान की साक्षात् रसराज मूर्ति का प्रत्यक्ष दर्शन भी करता हूँ। पंडित महाशय! अब आप विलम्ब क्यों करते हैं ?

स्वरूप—विलम्ब केवल आपकी बात समाप्त होने की प्रतीक्षा का था, अच्छा सुनिये—

लखि मुख चन्द्र सुधा हित व्याकुल, कामिनि नयन चकोर।
पियत पियत नहिं बुझत प्यास सखि! बाढत औरहु जोर ॥
कहा उपाय करूँ नहिं जानत, भयो विधाता वाम।
मुख में एक और दुख उपजो, झरत नैन अविराम ॥
दारुण दैव दिये दो लोचन, सोऊ पलकन संग।
वे हू भरे हर्ष सों, कैसे— लखूं सामरो रंग ॥
गुरु जन दुरजन दोउन के दृग, कंटक सम मग माहिं।
करैं चवाव, कहैं यह नारी, लाज तनक नहिं ताहि ॥
सबै उपेख जाय वन बैठूं, श्यामहि कर गल हार।
निरजन में सुख सों काटूँगी- समो, यही निरधार ॥

महाप्रभु विस्मय विस्फारित नेत्रों से स्वरूप की ओर देखते हुए

अतिशय आग्रह कर कहने लगे— स्वरूप ! अब तक अनेक बार तुम्हारे मुख से अनेक गान श्रवण किये, किन्तु यह गान इससे पूर्व कभी श्रवण किया था, ऐसा स्मरण नहीं होता। यह तो गान नहीं है- यह तो ब्रज रस की मधुर सुधा है। स्वरूप ! यह गान तुमने किस से सीखा ?

"लखि मुख चन्द्र सुधा हित व्याकुल कामिनि नयन चकोर"

आहा, बलिहार ! कैसा सुन्दर मधुरोज्वल शुभ दर्शन है और कैसा सुन्दर सुधामय शब्द विन्यास है। जैसा भाव है, वैसा ही रस है और तैसा ही पूर्ण प्रत्यक्ष है ! श्रीमुखचन्द्र से सुधा-निधि-लहरी प्रवाहित हो रही है, जिस प्रवाह का विराम नहीं है और मुखचन्द्र की किरणों से जगत समुज्वल है। कामिनी नयन चकोर उस सुधाकर सुधा की आशा में निशिदिन मग्न हैं, कैसा सुन्दर ! कैसा उज्वल ! कैसा मधुर भाव है। रामराय ! यह कवि कल्पना की भाषा नहीं है- यह साक्षात् दर्शन का फल है और हमारे स्वरूप ने कैसे अपूर्व स्वरों की मधुर झंकार से उस श्रीमुखचन्द्र सुधा-लहरी की उज्वल किरणों को हमारे हृदयों में प्रति फलित कर दिया। इतने दिनों में मानो यथार्थ-रूप से कर्ण अभी सार्थक हुये हैं।

"सबै उपेख जाय बन बैठूँ, श्यामहि कर गल हार।
निरजन में सुख सों काटूँगी, समो यही निरधार"॥

इस भाव की समानता संसार में दूसरी नहीं मिलती। "सब की उपेक्षा कर एक मात्र श्रीकृष्ण को अपने हृदय का भूषण बनाकर निर्जन वन में सुख से समय व्यतीत करूँ गी, अब यही निश्चय किया है।" जिन्हें उस मुखचन्द्र के दर्शन हो जाते हैं उनके मन में क्या फिर अन्य वासना रहती है, क्यों रामराय ? वे तो सब छोड़ कर केवल कृष्ण को ही चाहते हैं। रूपानुराग की यही प्रणाली है। स्वरूप ! तुम

धन्य हो- और धन्य है तुम्हारी दया को। तुम्हारे गान के मूल्य में, मैं सर्वदा के लिये तुम्हारे हाथ बिक चुका। यह कह कर महाप्रभु पार्षद गण के सहित श्री श्री जगन्नाथदेव के दर्शनों के लिये उठ खड़े हुये। उस समय दर्शकों को यही ज्ञात हुआ मानों पुण्य पवित्रता मिश्रित प्रेमभक्ति अनेक रूप धारण कर श्रीश्री आनन्द-रसामृत-मूर्ति का अनुगमन कर रही हैं।

अभिसार

आषाढ़ का महीना है। रथ यात्रा का समय सन्निकट आगया। नीलाचल में इस उत्सव की खूब धूमधाम हो रही है। आकाश सर्वदा मेघाच्छन्न रहता है। वर्षा का क्षण मात्र को विराम नहीं है। प्रभु का हृदय भी वर्षा के आकाश की तरह श्रीकृष्ण विरह से आच्छन्न रहता है। वर्षा वारि की तरह नेत्रों से अविरत अश्रुधारा गिरा करती है। भक्त गण बीच बीच में श्रीमंदिर में आकर प्रभु का दर्शन और प्रणाम कर जाते हैं। जो एकान्त अन्तरंग भक्त हैं वे अन्यत्र नहीं ठहरने पाते। प्रभु के दर्शन किये बिना उनके प्राण अधीर हो उठते हैं। कुछ वार्तालाप हो या न हो, वे केवल उस मधुर मूर्ति के दर्शन कर के ही परम प्रसन्न हो जाते हैं। किन्तु प्रभु की यह विरह यातना का क्लेश भक्तगण बिलकुल ही नहीं सह्य कर सकते हैं। किस प्रकार से प्रभु का चित्त अन्य विषय की ओर आकृष्ट हो, सब की यही चेष्टा रहती है, किन्तु यह प्रयास निष्फल होता है। कृष्ण कथा के अतिरिक्त अन्य किसी विषय में उनकी रुचि नहीं होती। यहाँ तक कि, श्रीश्रीजगन्नाथ देव के दर्शनों को भी अब पहिले की तरह नहीं जाते। इस दशा में प्रभु को देखकर भक्त गणों के मन में बड़ा एक विषम सोच विचार उत्पन्न हो गया।

वर्षा ऋतु में ब्रजरस का उद्दीपन स्वभाव से ही अधिक होता है,

आकाश में सर्वदा मेघमालाओं का समावेश – निविड कृष्ण घन घटा निरन्तर श्रीकृष्ण-स्मृती को जगाती रहती हैं। सुस्निग्ध-श्यामल-पत्रावली से परिपूर्ण तरुलताओं की निकुञ्जों में शिखिकुल की जो कल ध्वनि होती है वह हृदय के पत्त पत्त में घूम कर श्रीकृष्ण कथा ही प्रचरित करती है। वर्षा के दिनों में कभी कभी महाप्रभु जगन्नाथ वल्लभ नामक उद्यान की निर्जन कुटी में निवास किया करते हैं। वर्षाकाल में जगन्नाथवल्लभ उद्यान, अपनी वृत्तावली की श्यामल शोभा संपद से प्रभु के हृदय में ब्रज-माधुरी का संचार कर देता है। वर्षा के अविरत जल से उद्यानस्थित तरुलताओं की सघन श्यामल पत्रावली धुलकर सरसता पूर्ण स्निग्ध माधुरी से परिशोभित हो जाती हैं। कुटी के सम्मुखस्थ तमाल तरु की कोमल छवि सहज ही में प्रभु के हृदय में ब्रजरस का उदय कर देती है। उस समय ऊपर श्याम घन घटाओं से आवृत अकाश, सामने सघन श्यामल कुसुम कानन की अनन्त माधुरी और एक कुटी में कतिपय अन्तरंग भक्तों के संग कृष्ण विरह-व्याकुल श्रीगौरांग सुन्दर विराजमान होते हैं।

यह जिस दिन का वर्णन करते हैं, उसके दो दिन पूर्व से ही निरन्तर वृष्टि हो रही थी- क्षणमात्र भी सूर्यदेव के दर्शन नहीं हुये। आकाश निविड घन घटाओं से घिरा हुआ था। विपुल उद्यान की विशाल स्निग्ध श्यामल शोभा के मध्य में श्रीश्री महाप्रभु की प्रियतम वनकुटी स्थित है। आनन्द मय के प्रिय हरित क्षेत्र की इस प्रावृट्-शोभा की रंग भूमि का प्रत्यक्ष दर्शन किये विना केवल वर्णना के द्वारा उसका अनुभव करना असंभव है। प्रतिक्षण परिस्नात तरुलताओं की कोमलोज्वल मधुर मूर्ति सहज ही में चित्त के समक्ष वृन्दावन का भावोद्दीपन कर देती है।

वसंत ऋतु के प्रथम विकाश के समय इस लताकुंजपूर्ण उद्यान की वृक्षावली पर जिन सब कलकंठ विहंगों का कलरव सुनाई दिया करता था, इस समय उनमें से अब एक भी दिखाई नहीं देता- वह कोकिल

नहीं है, वह पपीहा नहीं है— वे फूल नहीं हैं, वे फल भी नहीं हैं— है केवल मेघ गर्जन से मत्त नृत्यशील शिखि समूह, और विरह वेदना उद्दीपक उनका केकारव। किन्तु तो भी यह उद्यान आनन्द से परिपूर्ण है- भाद्र मास की भरी हुई भागीरथी की तरह भरपूर-आनन्द से स्फीत और उच्छ्वसित है। आकाश की सुन्दर धारा से चारों ओर ही श्यामल स्नेह की सुधा तरंग उठ रही हैं।

सुविशाल कानन भूमि में चारों ओर सघन वन का श्यामल सुन्दर दृश्य है- वृक्ष लता वल्लरी सभी पललधारा से सद्यःस्नात- कल धौत-चिर-प्रफुल्ल और चिर सुन्दर हैं— पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, चारों ओर जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक अनन्त तीर्थ यात्रियों की तरह सद्यःस्नात वृक्षवल्लरी की पंक्ति दिखाई देती हैं- इस जगन्नाथ वल्लभ उद्यान की महिमा महान् अनन्त और असीम है। इसी के मध्य में, एक लता कुटीर में महाभाव स्वरूपिणी श्रीराधिका के महा-भाव में मग्न श्रीश्रीमहाप्रभु विराजमान हैं। स्वरूप दामोदर और मुकुन्द दत्त मृदुल मधुर स्वर से गान कर रहे हैं:—

झर झर बरसत घन सों वारि। नभ छाई चहुँ दिशि अंधियारि॥
सखि उपाय कछु कर निरधार। करैं न जासों हरि अभिसार॥
हिय में श्याम चन्द परकाश। संग मनोज करत तिमि नाश॥
का विधि मैं अब बरजूं कान। यही सोच सों धड़कत प्रान॥
दामिनि दमक दहत मम गात। रिम झिम वारि झरत सब पात॥
रहन चहत घर, रह्यो न जाय। विघन विथा, कहु कैसे जाय॥
चढ़ मन-रथ, लै सारथि काम। जाय मिलूं मैं तुरतहि श्याम॥
कहत यही मन बारम्बार। जिन डर कामिनि कर अभिसार॥

गान श्रवण कर महाप्रभु अधिकतर अनमने होकर कहने लगे- "तुम सब मुझे कहाँ ले आये हो कुछ ठीक समझ में नहीं आता, मैं कहाँ पर हूँ? मालूम होता है मैं वन में आगया हूँ।" यह कह कर ही

मौन हो गये, अवश की तरह अनिमिष नेत्रों से सामने के तमाल वृक्ष की ओर देखने लगे। इस समय ऐसी दशा में क्या करना चाहिये यह स्वरूप, मुकुन्द, रामराय और रामवसु आदि भी कुछ स्थिर न कर सके। रामानन्द राय प्रभु के पीछे की ओर जाकर उनको पकड़ कर बैठ गये और धीरे धीरे श्रीकृष्ण नाम सुनाने लगे।

प्रभु रामानन्द के गले से लिपट कर विरह विह्वल अवस्था में रोते रोते कहने लगे—सखि! इस दारुण दशा में अब मेरा घर में रहना नहीं हो सकता। और वर्षा भी बन्द नहीं होती—आकाश में घोर अंधकार छा रहा है। अब बताओ, भला, मैं क्या करूँ? संभवतः प्यारे मेरी खोज में संकेत स्थल पर पहुँच गये होंगे। मैं अब यहाँ कब तक वर्षा बन्द होने की बाट देखूँ? सखि! श्याम दर्शन में क्या ऐसे ही विघ्न होते हैं? अथवा विघ्न ही क्या है? यही तो श्याम दर्शन का सुसमय है।

यह कह कर प्रभु विह्वल होकर रामानन्द के कंधा का सहारा लेकर खड़े होने की चेष्टा करने लगे, और सामने की ओर देख कर आग्रह पूर्वक कहने लगे—"प्यारे तनक ठहरो, यह लो मैं आगई।" यह कह कर ही फिर रामानन्द के गले से लिपट नेत्र निमीलन कर बैठ गये।

प्रभु की यह बाह्यज्ञानहीन अवस्था देख कर अत्यन्त भय-भीत और मर्माहत होकर रामवसु स्वरूप से कहने लगे—"पंडित! प्रभु की यह विह्वल दशा देखना, मेरे लिये बहुत ही असह्य है। ये जब स्वाभाविक अवस्था में रहते हैं तब तो अति प्रिय निज जन से प्रतीत होते हैं; किन्तु इस दशा में ऐसा ज्ञात होता है मानों हमारे साथ उन का कोई सम्बन्ध ही नहीं है हम लोग इनकी प्रीति के एक कण के भी पात्र नहीं हैं। मैं सत्य कहता हूँ इससे मुझे बड़ा क्लेश होता है।

स्वरूप—वसु महाशय! कृष्ण प्रेम की यही रीति है; कृष्ण माधुर्य्य के आस्वादन में यह तन्मयता अति स्वाभाविक धर्म है।

रामवसु—यह बात ठीक है। ये अपने आनन्द सुख में निमग्न हैं, किन्तु इनके नयन और मुख मण्डल का भाव देख कर मुझे कष्ट होता है। यह कैसा कुछ एक अस्वाभाविकसा भाव है।

स्वरूप—सो तो हो ही गा। ये तो इस समय राधाभाव में निमग्न हैं—समस्त जगत ही कृष्ण मय देखते हैं; चितवन तो देखो कैसी साग्रह सतृष्न दृष्टि हैं—मानों समीप ही सन्मुख कृष्ण दर्शन कर नेत्र दोनों उनकी ओर धावित हो रहे हैं।

रामवसु—ठीक मानों श्रीमती राधिका ही हैं।

स्वरूप—सो तो ठीक ही है। श्रीराधा भाव से श्रीकृष्ण माधुर्य का आस्वादन करना और प्रेमिक भक्तों को उस भाव का प्रदर्शन कराना, यही इस लीला की एक विशेषता है।

रामवसु—यह देखो! प्रभु के नेत्र निमीलित हो गये—नयन-कोण में अश्रुधारा और ललाट पर स्वेद विन्दु दिखाइ दे रहे हैं।

स्वरूप—इससे मालूम होता है, शीघ्र ही चेतना होगी। मुकन्द! तुम प्रभु के मस्तक पर धीरे-धीरे पंखा करो और मृदुस्वर से कृष्ण नाम उच्चारण करो, मैं इनके चरणों की ओर वैठता हूँ।

गोविन्द—यह सेवा तो मेरी है। जिसमें प्रभु को शीघ्र चैतन्य हों. आप लोग इसकी व्यवस्था किजिये।

स्वरूप—गोविन्द! प्रभु वार-वार मुझ से कहा करते हैं स्वरूप! मैं जबतक लीला दर्शन सुख में मग्न रहता हूँ तभी तक आनन्द में रहता हूँ, इसके अतिरिक्त केवल विरह यातना ही सर्वदा होती रहती है।

गोविन्द—यह सब बातें मैं कुछ नहीं समझता। प्रभु के उत्तान नयन, अचेतन भाव, और मलिन मुख मण्डल—मैं बिलकुल ही सह नहीं कर सकता।

रामवसु—मेरी भी वही दशा है।

स्वरूप--मैं ही क्या इसे सह सकता हूँ ? परन्तु बात यह है कि, उनको जिस में सुख हो वही हमारा सब का परम कर्तव्य है।

जिस समय यह सब बातें हो रहीं थीं उस समय रामानन्द निर्निमेष नेत्रों से केवल प्रभु के श्रीमुख को निरीक्षण कर रहे थे और अपने अञ्चल से प्रभु के अश्रु मार्जन करते जाते थे। कुछ क्षण के अनन्तर ही प्रभु नेत्र-उन्मीलन कर पुनः बाह्य दृष्टि से देखने लगे और मृदुस्वर से कहने लगे-- "तुम कौन हो ? अच्छा, समझ गया स्वरूप हो" यह कहकर उठबैठे। नेत्रों से इस समय भी जलधारा प्रवाहित हो रही थी। वाणी अत्यन्त मृदु और अस्फुट-आर्तिभाव से पूर्ण थी। कुछ एक दो बातें कहना चाहते थे, कहते-कहते रुक गये, नहीं कह सके—भाव गोपन कर कहने लगे--अभी वर्षा हो रही है ? आज उद्यान की शोभा कैसी मनोहर है-मानो ब्रजमाधुरी खिल उठी है।

स्वरूप--कहिये, दर्शन तो हो गये ?

महाप्रभु किंचित् हँसकर कहने लगे-सुख का स्वप्न कितनी देर रहता है ? स्वरूप ! इन सब बातों की अब क्या आवश्यकता है ? मेरा तो समस्त जीवन ही मानों एक स्वप्न है। खैर, इन बातों को अब रहने दो। मुझे ऐसा स्मरण होता है मानों एक अभिसार के गान की झंकार मेरे कर्णों में गइ थी।

रामानन्द--हाँ प्रभु, यह बात सत्य है। स्वरूप पण्डित ने और मुकुन्द ने मिलकर अभिसार का एक पद गाया था, वह बड़ा मधुर और सुन्दर था। आप उस समय भावाविष्ट थे, इसी से मेरा मन भी उधर नहीं था; मैं भी उस सुधासंगीत का रसास्वादन अच्छी तरह नहीं कर सका।

प्रभु--हाँ--ठीक है-किन्तु इससे आई हुइ वंशीध्वनी की तरह अब भी मेरे कर्ण कुहरों में उसकी झंकार गूंज रही है:—"हिय में श्यामचन्द्र परकाश" इसी प्रकार था न ?

स्वरूप—हां प्रभु !

प्रभु—परन्तु समस्त गान नहीं सुना था, यदि सुना भी हो तो स्मरण नहीं है; केवल इतना ही अच्छी तरह से स्मरण रहा। वह क्या अभिसार का पद था ?

स्वरूप—हां प्रभु !

प्रभु—"अभिसार"—क्यों स्वरूप !-अति सुन्दर भाव हैं। प्राण जिसको चाहते हैं उसके दर्शनों के लिये जो आकुल प्राणों की दौड़ है वही तो अभिसार है। क्या कहते हो स्वरूप !

स्वरूप—हां प्रभु ! यह ठीक है। किन्तु यह दौड कोई सीधी बात नहीं हैं, नहीं तो मैं भी दौडने की चेष्टा करता—वह आप ही को आता है। हम लोगों से नहीं दौड़ा जाता।

प्रभु—मुझ को भी कहां आता है—जहां पर मैं पहिले था, वहीं पर अब भी हूं—एक पैर भी तो इधर उधर नहीं हट सका—उसको तो नहीं पा सका

रामानन्द—मैं श्रीअङ्ग की बात तो नहीं कह सकता-किन्तु नेत्रों की दौड़ तो मैंने प्रत्यक्ष ही देखी थी।

प्रभु—वास्तव में बात तो यह है कि, मुझे अन्य भाव में मानों स्वप्न में उस श्यामसुन्दर के दर्शन हुये थे—और वे मुझे कुछ संकेत कर गये थे।

स्वरूप—प्रभो ! वह "अन्य भाव" क्या है ? हम लोग तो "अन्य" कुछ नहीं समझते।

प्रभु—रहने दो स्वरूप ! अब अभिसार ही की बातें कहो। तुमने अभिसार का कौनसा पद गाया था ?

स्वरूप—वह आजहीकासा दिन था—अविरत मेघ वृष्टि के कारण चारों ओर अंधकार, बादलों की गंभीर गर्जन और झिम-झिम वर्षा का शब्द हो रहा था। ऐसी अवस्था में श्रीराधिका का घर में रहना भी कठिन था और घर से बाहर निकलना भी कठिन था।

रहन चहत घर, रह्यो न जाय।
विघन विधा यह कैसे जाय॥

प्रभु—हाँ, इसके अनन्तर ?

स्वरूप--मनोरथ के लिये तो कोइ ऐसा स्थान नहीं है जहां वह न जासके, और न उसको कोइ बाधा देने वाला ही है। बस श्रीमती मनोरथ पर आरूढ हो श्याम के दर्शनों को घर से बाहर चल पडीं।

स्वरूप—प्रभो ! अभिसार का मन विघ्नों का विचार कर स्थिर नहीं रह सकता।

रामवसु--प्रीति का आकर्षण ऐसा ही होता है। वह मेह बादलों की वाधा का विचार नहीं करता।

रामानन्द--केवल मेघ वृष्टि की वाधा ही तो नहीं है- और भी अनेक वाधायें हैं, जैसे कि, कुटिल पडोसियों की विषम दृष्टि, गुरुजन की गंजना और श्याम दर्शन के लिये प्राणों की आकुलता। लोग यह कहावत भी कहते हैं- चाहे श्याम से प्रीति रख, चाहे कुल की रीति रख।

स्वरूप- श्याम के प्रेम में क्या कभी कोई कुल-मान की रक्षा कर सका है ? कुल—मान- धैर्य-गांभीर्य सब को बहा कर ब्रजवाला उन की खोज में बाहर निकलती हैं। कवि ने यथार्थ ही कहा है:-

पिय के हित बन जोगिनी, विचरूं देश विदेश।
पूछूंगी यह सबन सों, रहत कहां प्रानेश॥

स्वरूप की बात सुन कर रामानन्द वसु के दोनों नेत्र अश्रु जल से परि पूर्ण हो गये और व्यग्रता पूर्वक गद् गद् कंठ से कहने लगे-- यही तो--यही तो ! इस प्रकार की व्यग्रता न होने से क्या कृष्ण प्राप्ति हो सकती है ? जिस व्याकुलता में अभिसार कर असमय में भी घर से बाहर निकलना पड़ता है, वही व्याकुलता ही प्रकृत साधन है।

आहा ! श्याम-अभिसार, कैसा सुन्दर, कैसा मनोहर, कैसा चित्त के प्रबल बल का परिचायक है।

स्वरूप—अभिसार, अनुराग का अनिवार्य परिणाम है—जहां अनुराग प्रवल होता है—वहां अभिसार अवश्य होता है।

महाप्रभु—स्वरूप ! तुमने ठीक ही कहा,—अनुराग जितना प्रवल होता है अभिसार भी उतना ही अनिवार्य होता है। ब्रजरस का अभिसार अपूर्व रसमय है। तुम्हारे समान प्रेमिक भक्तों के अतिरिक्त और किस से यह तत्व मुझे सुनने को मिलेगा ? आज इस वर्षा के दिन और इस मनोहर श्रीजगन्नाथवल्लभ उद्यान में तुम सब ब्रज-अभिसार का वर्णन सुनाकर मुझे कृतार्थ करो।

महाप्रभु अतिआर्तभाव से ये बातें कहकर स्वरूप के मुख की ओर सरल-प्राण-शिशू की तरह सतृष्ण होकर देखने लगे। स्वरूप विनीत भाव से कहने लगे—अभिसार के योग्य प्राण प्राप्त न होने से अभिसार का गान नहीं गाया जा सकता। आपकी कृपा से आपकी प्रसन्नता के लिये अभिसार के अनेक गान सीख रखे हैं। किन्तु दयाकर ऐसे प्राण प्रदान कीजिये जिसमें सर्वदा आपकी सेवा में मन लगा सकूं, और प्राणों की पूर्णता के सहित हृदय के प्रवल अनुराग से आपके कृपामय आदेश का परिपालन कर सकूं।

रामानन्द--आज जिस प्रकार आकाश की वृष्टिधारा से प्रतप्त पृथिवी परिसिक्त हो रही है, ज्ञात होता है हम लोगों के शुष्क हृदय भी उसी प्रकार श्रीपाद स्वरूप पंडित के सुधा सङ्गीत की रसधारा से अभिषिक्त होकर परितृप्त हो जांयगे।

स्वरूप—सुरसिक राय महाशय रसशास्त्र के सुपण्डित हैं। ये भला व्यङ्ग वाक्यों के प्रयोग में कृपण क्यों बनेंगे ? अस्तु, अब प्रभु का आदेश प्रति पालन करना ही कर्तव्य है।

यह कहकर स्वरूप श्रीमहाप्रभु के श्रीचरणों में प्रणत होकर गिरपडे कुछ क्षण के अनन्तर उठकर सजल नेत्र हो कहने लगे—

प्रेममय ब्रजगोपियों का अभिसार प्रेम की पराकाष्ठा है। वर्षा के प्रवल वेग से गंगा का स्रोत दोनों तटों को काटता हुआ प्रवाहित होता है। सुनील सागर सङ्गम के लिये जन्हुतनया के उस विपुल अभिसार को भली प्रकार देखा है, किन्तु श्याम-सागर की ओर रूपानुराग के प्रवल वेग में रसमयी ब्रजवधुगण के अभिसार की तुलना में वह कुछ भी नहीं है। यह अभिसार, कैसा भीषण वेगमय, कैसा विपुल, कैसा अदम्य शक्तिमय है; किसी प्रकार की भी वाधा इसकी गतिरोध नहीं कर सकती जो कुसुम से भी सुकोमल हैं, उनके अभिसार में इतना प्रवल वेग, यह धारणा के भी अतीत है। जिनका आचरण सब धर्मों का प्रमाण-स्वरूप है, वे श्यामसुन्दर के अनुराग में सब धर्मों को तिलांजलि देकर, उन्मादिनी की तरह घर से निकल कर, शतशत विघ्न वाधाओं की अवहेलाकर, कंटक-कङ्कर पूर्ण बन में श्यामसुन्दर को अन्वेषण करती हैं—यह अति चमत्कार अभिसार है।

प्रभो ! मनुष्य प्रेमरस को कोमल समझते हैं, किन्तु यह कोमलता एक महाशक्ति का आधार है—यह बात मन में विचार करने से भी विस्मित होना पड़ता है। इस शक्ति के मूल में एकमात्र उसी रूपानुराग का प्रवल वेग निहत है

"रैन दिवस कब होत सखि ! जान परत नहिं मोय।
सोवत जागत श्याम को रूप प्रकाशित होय॥"

गोपियों के हृदय में रात्रिदिन श्याम रूप का यह अनन्त जागरण ही अभिसार का लक्षण है। श्रीकृष्ण के प्रवल आकर्षण के समय मान-कुल-सुख-शान्ति को लेकर अपने घर में चुपचाप बैठा रहे, ऐसी किसकी सामर्थ है? वर्षा की निरन्तर जलधारा से जब नदी का वक्षस्थल पूर्ण रूप से भर जाता है तब दोनों तटों को काटकर प्रवल वेग से धावित होने के अतिरिक्त उसकी अन्य गति क्या है? श्याम के अनुराग से चित्त जब परिपूर्ण हो उठता है तब ब्रजवधूओं

के लिये भी अभिसार के अतिरिक्त आत्मयातना भार से मुक्त होने के लिये अन्य कोइ उपाय नहीं है।

महाप्रभु -स्वरूप! रासलीला के आरम्भ में श्रीकृष्ण जब गोपी-मण्डल से अन्तर्हित हो गये थे, तब गोपीयों ने व्याकुल होकर वन-वन में भ्रमण कर श्रीकृष्ण का अनुसंधान कीया था--वह जो श्रीकृष्ण के अनुसंधान में गोपीयों का वन भ्रमण था--क्या वह भी अभिसार था?

स्वरूप--नहीं प्रभु! अभिसार का अर्थ है, अभिमुख गमन करना; अर्थात् श्रीकृष्ण जिस स्थान पर हों उस स्थान की ओर गमन करने का नाम अभिसार है। अभिसार करने से पूर्व श्रीकृष्ण का स्थल जानना चाहिये।

महाप्रभु—ब्रजवधू सब कुलवाला हैं, श्रीकृष्ण स्वतन्त्र और स्वेच्छा-विहारी हैं, वे कब कहाँ रहते हैं, यह ब्रजवाला किस तरह जान सकती हैं? और विशेष कर रात्रि के समय उनको बन में पाने के लिये वे किस आशा से अभिसार करती हैं?

स्वरूप—प्रभो! ब्रजलीला-रहस्य के मूल में प्रवल अनुराग वर्तमान है, किन्तु उस अनुराग के कार्य साधन में मंत्रणा होती है, षड़यंत्र रचा जाता है। इन सब बातों का आभास आपकी आज्ञा से राय महाशय ने पहिले ही प्रकाश किया थाः—

राधाकृष्ण विहार नित, है अति गूढ महान।
दास्य और वात्सल्य के, नहिं गोचर यह ज्ञान॥
केवल ब्रजवनितान को, है या में अधिकार।
जिन के द्वारा होत है, यह लीला विस्तार॥
विन सखियन के होत नहिं, ब्रजरस पुष्ट विशेष।
सखी ताहि विस्तार पुन, पोषत सखी अशेष॥

प्रभो! केवल श्रीमती राधिका के अनुराग से ही मिलन नहीं

होता, क्योंकि एक ओर के अनुराग से जो मिलन होता है वह मिलन सरस-मिलन नहीं है। एक के अनुराग से दर्शन होना तो संभव है, किन्तु मिलन सर्वथा असंभव ही है। दोनों के अनुराग का फल स्वरूप जो परस्पर का दर्शन है, उसीका नाम मिलन है। जो केवल दर्शनार्थ गमन किया जाता है, उस गमन का नाम अभिसार नहीं है। श्रीकृष्ण से मिलन के लिये जो गमन किया जाता है, उसी का नाम अभिसार है। मिलन से पूर्व दोनों का अनुराग प्रवल और स्पष्ट होता है। उस समय सखियों की सहायता से मिलने का सब प्रवन्ध ठीक किया जाता है। सखी उस समय उभय पक्ष की दूती का कार्य करती हैं। मिलने के लिये एक स्थान निर्दिष्ट होता है। उसीका नाम संकेत स्थान है।

महाप्रभु—स्वरूप ! ठहरो, तुम्हारी बात काट कर मैं कुछ कहता हूँ। तुमने जो बात कही है वह एक बड़े कड़े प्रवन्ध की बात है। इस प्रकार प्रवन्ध करने के लिये अवश्य ही एक विशेष परामर्श की आवश्यकता है; किन्तु अनुराग के मिलने में इतनी अन्य बातों की अपेक्षा होने से तो, मिलन बहुत ही कठिन व्यापार है।

स्वरूप—हां प्रभु ! कठिन सा कठिन है ? उसमें कितनी वाधा हैं ? किन्तु समस्त विघ्न-वाधाओं को अतिक्रम करने के अनन्तर जो मिलन होता है, वह फिर इतना मधुर होता है कि, उस प्रकार का माधुर्य अन्य किसी भाव में होना सम्भव पर नहीं है। जो वस्तु सहज में प्राप्त होती है, साधारणतः उसका मूल्य भी बहुत कम होता है; और जो अति क्लेश से प्राप्त होती है वह अत्यन्त मधुर होती है। इस हिसाब से इस प्रकार के मिलन का फल स्वभावतः अत्यन्त मूल्यवान होता है।

महाप्रभु—यह ठीक बात है। अच्छा इसके अनन्तर ?

स्वरूप—इसके अनन्तर, संकेत-स्थान निर्दिष्ट कर, फिर समय स्थिर किया जाता है। तदनन्तर सखी श्रीकृष्ण को उस समय उस स्थान

पर आने को निमंत्रित करती है और श्रीराधिका को भी उस प्रबन्ध की सूचना देकर यथा समय संकेत-स्थल पर जाने की बात कहती है।

महाप्रभु—श्रीकृष्ण के लिये तो कुछ अधिक बाधायें नहीं हैं, किन्तु श्रीमती राधिका के लिये अनन्त बाधायें उपस्थित होती हैं।

स्वरूप—बाधा सी बाधायें हैं ? घर में बाधा, बाहर बाधा, मन में बाधा, बन में बाधा, बाधा ही बाधा हैं। किन्तु फिर भी अनुराग की ऐसी महिमा है कि, जिसके कारण समस्त विघ्न बाधाओं को पद-दलित कर श्रीमती अपने प्राणवल्लभ से मिलने के लिये डरती डरती व्याकुल भाव से अभिसार करती हैं।

महाप्रभु—स्वरूप ! श्रीराधिका के अभिसार का भाव वास्तव में बड़ा ही चमत्कार है। एक ओर व्याकुलता है, दूसरी ओर आशंका; इन दो भाव संकटों के मध्य में होकर श्यामसुन्दर की ओर अग्रसर होंना अत्यन्त साहस का कार्य है।

स्वरूप—यही तो बात है। इसीलिये तो दुःसाहस भी अभिसार का एक अंग है। उभय संकट तो है ही। श्रीराधिका श्रीकृष्ण-अभिसार के लिये व्याकुल हो रही हैं, इधर घर में गुरूजन और पुर में परिजन सब जाग रहे हैं। किसी के नेत्रों में निद्रा नहीं है, किस प्रकार श्याम के दर्शन करें:— इस प्रकार के संकट में पड़ कर सोच विचार करती करती अन्त में श्याम के दर्शनों को निकल ही पड़ीं। श्रीमती जिस प्रकार से दर्शनों को चलीं थीं, उस समय का वर्णन कवि ने इस प्रकार से किया है:—

नव अनुरागिनि राधिका, व्है निशंक तजमान।
चली अकेली पिय मिलन, डगर बगर नहिं ज्ञान॥
त्यागे मणिमय हार पुन, कुचनहुं मानत भार।
करकंकण अरु मुद्रिका, मग में दई उतार॥
पगपायल हू त्याग कै, जात अँधेरी रात।

हियो प्रकाशित मदन सों, भयो पुलक सब गात ॥
विघन अनेकन शूलसम, पड़े जु मग के मांहिं ।
प्रेम धार सें काट सब, गई कुंज डर नाहिं ॥

पद समाप्त होते ही महाप्रभु कहने लगे--अतिसुन्दर, स्वरूप! जिस समय श्रीमती राधिका श्रीकृष्ण दर्शन के लिये गमन करने लगीं उस समय उनको अपना देह भी भार मालूम होता था। अपने सौन्दर्य-वर्धक आभूषणों को भी परित्याग कर संकेत स्थान को गईं थीं। हम देखते हैं, अभिसार में आत्म-दृष्टि तक लुप्त हो जाती है; आत्म-देह की विस्मृति हो जाती है। श्रीराधा प्रेम का कैसा अनिर्वचनीय प्रभाव है।

स्वरूप--यही तो है। श्रीराधिका के प्रेम की समानता कहीं भी नहीं है। उस समय श्रीमती, श्रीकृष्ण दर्शन की लालसा से ही गई थीं। अपना रूप दिखाने के अभिप्राय से नहीं गई थीं। उस समय अलंकारों की क्या आवश्यकता थी?

निज इन्द्रिय सुख लालसा, कहत ताहि सब काम ।
कृष्ण प्रीत हित वासना, प्रेम तासु है नाम ॥
काम शब्द को अर्थ है, केवल निज सम्भोग ।
जासों उपजै कृष्ण सुख, है वह भक्ति सुयोग ॥
लोक वेद कुल कान अरु, जात पांत धन गेह ।
छांड़ सबन कों प्रेम में, करत कृष्ण सों नेह ॥
याही कों सब कहत हैं, सुदृढ़ कृष्ण अनुराग ।
श्वेत वस्त्र सम स्वच्छ है, नहिं तनकहु है दाग ॥
काम प्रेम के मध्य में, अन्तर अधिक विशेष ।
काम अंधतम जानिये, प्रेम प्रकाश दिनेश ॥
सदा रहत ब्रजनागरी, काम गंध सों हीन ।
केवल कृष्ण विलास हित, रहत कृष्ण में लीन ॥

महाप्रभु—स्वरूप! काम और प्रेम की भिन्नता का यह लक्षण अत्यन्त चमत्कार है। किन्तु इसमें एक संदेह यह है कि, जिस समय व्याकुल होकर श्रीमती ने कृष्ण दर्शन के लिये अभिसार किया था, उस समय क्या उनके मन में केवल यही भाव था कि, श्रीकृष्ण की सेवा करके मैं उनको सुखी करूँगी। इसके अतिरिक्त अपने सुख की कोई इच्छा नहीं थी। क्या इसी वासना को हृदय में धारण कर श्रीमती ने अभिसार किया था? श्रीकृष्ण के दर्शन से जो अपने नेत्रों को दर्शन-सुख प्राप्त होता है, क्या वह आत्मेन्द्रिय प्रीति नहीं है? यदि श्रीकृष्ण को सुख देने के लिये ही श्रीमती का यह प्रयास था तो, क्या वह केवल शुष्क कर्तव्य कर्म में परिगणित नहीं होगा? क्या कहते हो स्वरूप?

स्वरूप—यह समस्या बड़ी कठिन है। मेरे मन में तो ऐसा पतीत होता है कि, श्रीराधिका के चित्त में आत्मेन्द्रिय-सुख की इच्छा का किंचित् लेश भी नहीं था। कर्तव्य पालन का भाव भी उसमें नहीं था। उनका आत्म-सुख के लिये श्रीकृष्ण से मिलने का प्रयास नहीं था—क्योंकि उस मिलने के प्रयास में सुख की अपेक्षा, दुख ही अधिक था।

महाप्रभु—तो क्या श्रीकृष्ण सेवा करने को ही अपना कर्तव्य समझ कर वे उनके दर्शनों को गई थीं?

स्वरूप—ऐसी दशा में तब तो प्राणों का आकर्षण ही कहाँ रहा और माधुर्य ही कहाँ रहा?

महाप्रभु—यदि इसमें आत्मेन्द्रिय सुख की आशा भी न हो और निष्काम कर्तव्यता का भाव भी न हो तो, इस प्रकार के कष्टमय प्रयास का उद्देश ही क्या था?

स्वरूप—मेरे मन में तो प्रभु! ऐसा मालूम होता है कि, श्रीमती ने प्राणों के आकर्षण से ही व्याकुल होकर श्रीकृष्ण दर्शन के लिये गमन किया था। वे श्रीकृष्ण का रूप दर्शन किये बिना स्थिर रह नहीं सकती हैं, यह उनका एक स्वभाव है। इसमें सुख की इच्छा बिलकुल

नहीं है, उलटा सुख के परिवर्तन में दुःख ही भोगना पड़ता है। उस दुःख का अनन्त ताप स्वीकार करके भी श्रीमती श्याम दर्शन के लिये व्याकुल हो उठतीं हैं—सुख के परिवर्तन में शतवृश्चिक-दंशन का दाह उनको भोगना पड़ता है, किन्तु तो भी उनका हृदय श्रीकृष्ण-दर्शन किये बिना स्थिर नहीं रह सकता। यही श्रीराधिका के प्रेम का स्वभाव है।

महाप्रभु—यह सिद्धान्त भी बुरा नहीं है, किन्तु वास्तव में बात तो यह है कि, निष्कपट प्रेम का स्वभाव और प्रभाव अचिन्त्य होता है। न तो उसका कोई लक्षण स्थिर किया जा सकता है, और न युक्ति द्वारा उसका सिद्धान्त ही स्थापित किया जा सकता है। वह केवल अनुभव का ही विषय है। प्रमाण परीक्षा व लक्षण बिचार से वह तत्व नहीं जाना जा सकता—वह अनुभव ही के योग्य है। जलते हुए घर में सोते हुए बालक को उठा लाने के लिये स्नेहमयी माता जिस समय जलती हुई अग्नि की विपद को जानती हुई भी उस गृह की ओर धावित होती है, उस समय उसके हृदय में कर्तव्य बुद्धि या पुत्र-रक्षा द्वारा भावी आनन्द की आशा उदित नहीं होती है। वह प्राणों के आकर्षण से ही उस कार्य में प्रवृत्त होती है; ऐसा किये बिना वह स्थिर नहीं रह सकती, इसीसे वह इतना दुःसाहस—इतना कठिन प्रयास करती है—यही बात है न, क्या कहते हो स्वरूप ?

स्वरूप—हां प्रभु, यही कहा था, त्रिजगत् में श्रीराधिका के प्रेम की तुलना कहीं भी नहीं है।

महाप्रभु—ठीक है—बिलकुल ठीक है। अखिल रसामृत शृङ्गार रस-राज-मूर्ति श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिये एकमात्र श्रीराधा प्रेम ही साधन है। जीव का हृदय प्रेममय श्रीकृष्ण दर्शन के लिये जब गोपी भाव से व्याकुल होता है और उस व्याकुलता की अधिकता में प्रेममय जब भक्त के हृदय द्वार पर आकर अपने आगमन का संवाद भेजते हैं, और साधक का हृदय उनके दर्शनों की आशा से

उत्साहित और प्रफुल्ल होकर उनसे मिलने के लिये धावित होता है तब संसार उससे छूट जाता है। संसार के कोलाहल और विघ्न बाधाओं के बीच में होकर जीव उस समय अपने प्राणवल्लभ के चरणों के समीप पहुँचने की चेष्टा करता है—यही भक्त साधक का अभिसार है, इसी का आदर्श श्रीमती राधिका हैं। साधक के मानस-नेत्रों के सन्मुख एक समुज्वल आदर्श के रहने की अत्यन्त आवश्यकता है। किसी प्रकार का प्रकाश न होने से अंधकार में गम्यस्थान पर पहुँचना असम्भव है, श्रीकृष्णाभिसारी साधक के सन्मुख भी एक समुज्वल आदर्श का प्रयोजन है।

रामराय—सो तो इस बार जीवों के सौभाग्य से अति समुज्वल आदर्श स्वयं ही आगया है।

रामानन्द की बात पूरी होने भी नहीं पाई कि, स्वरूप ने गान आरम्भ कर दीयाः—

गौर न होते कैसी होती, का विध रहतो देह।
कौन जनातो जग में ब्रजरस, राधाकृष्ण सुनेह॥
मधुर सु वृन्दाविपिन माधुरी—

महाप्रभु ने कुछ अशन्तोष का भाव प्रकाश करते हुए, हाथ से स्वरूप का मुख बंदकर दिया, स्वरूप का गान मुख के मुख में ही रह गया, पूरा समाप्त नहीं हो सका। स्वरूप मुख फेरकर कहने लगे—"जितना गाया उतना ही बहुत है"

रामानन्द गंभीर भाव से कहने लगे—प्रभो! दास का एक प्रश्न है। मेरा निवेदन यह है कि, स्वरूप के इस गान में ऐसी क्या बात थी जो प्रकाश करने के अयोग्य थी? यह नील सागर रातदिन अपनी उत्ताल तरङ्गों से उच्छ्वसित हो रहा है; क्या यह बात कोई नहीं कह सकता है? इस सुनील आकाश में जब चन्द्रमा की किरणें प्रकाशित हो रही हों उस समय यदि कोई मनुष्य यह कहे कि, आकाश

में चन्द्रोदय हो रहा है, इससे क्या चन्द्रमा असन्तुष्ट होगा ? इस गोपन की चेष्टा का क्या फल है ? स्वतः प्रकाश वस्तु का आत्मगोपन नहीं हो सकता। इस वार जीवों का यह परम सौभाग्य है कि, श्रीराधा प्रेम का उज्वल आदर्श हम लोगों के नेत्रों के सन्मुख हो गया है।

महाप्रभु—मैं तुम लोगों की यह तर्क-युक्ति सुनने के लिये तुम्हारी शरण नहीं आया हूँ। मैं एक अधम सन्न्यासी हूँ, सर्वदा अपने मन के ताप से ही तपता रहता हूँ, कहीं भी शान्ति प्राप्त नहीं होती—इसी से तुम्हारा सब का कृपा-भिखारी बना हूँ। तुम लोग ब्रजरस का पान कराकर मेरे तृषित हृदय की दारुण पिपासा को शान्त करते हो, जिससे मैं कृतार्थ हो जाता हूँ। परन्तु बीच-बीच में इस प्रकार का बिपरीत कार्य करना क्या तुम लोगों का कर्तव्य है ?

स्वरूप महाप्रभु को और कुछ कहने का अवसर न देकर जल्दी से बोल उठे—दयामय भिखारी महाशय ! आपकी भिक्षा की झोली पूर्ण कर सके, मुझे तो संसार में ऐसा मनुष्य दिखाई नहीं देता। सिन्धु-श्रोत की तरह कृष्ण कथा का अनन्त श्रोत रात्रि दिवस कर्ण-पथ से वहकर जाने पर भी उस पिपासा की शान्ति नहीं होती। अच्छा, सुनिये, अभिसारा का और एक पद गान करता हूँ:—

आज सखी कैसो है दुर दिन।
घटा घिरीं नभ दामिनि दमकत, पवन चलत जल वरसतहैं घन॥
पीतम अधिक अधीर मोउ सों, प्रथमहिं पहुंच गये सुकुञ्ज वन।
देखत देखत वाट अकेले, व्याकुल होत होंयगे मो विन॥
आवत याद मोहि जव उनकी, थरथर कांप उठत तब ही तन।
कर अभिसार तुरत मैं पहुंचूं, उन विन भार भयो मम जीवन॥
भई रात हू अधिक अंधेरी, सोय गये घर के सब गुरुजन।
एसो समो चूक जिन सजनी, दै पहुँचाय मोय पिय चरनन॥

स्वरूप ने इस गान को इस प्रकार से गाया कि, स्वयं महाप्रभु भी स्वरूप के मुख को ओर चकित भाव से देख कर मन में विचारने लगे, मानों ब्रजरस मूर्तिमान् होकर स्वरूप के मुख से प्रकाशित हो रहा है। महाप्रभु अधीर भाव से स्वरूप को आलिंगन कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से रुदन करने लगे। कुछ क्षण के अनन्तर धैर्य धारण कर कहने लगे— स्वरूप ! तुम्हारे बिना मेरी गति नहीं है। आज जैसा दिन है, उसी के उपयोगी यह तुम्हारा गान है। वर्षा ऋतु आते ही ब्रज के अभिसार की बात मेरे मन में जाग उठती है। आकाश जिस समय मेघों से समाच्छन्न होता है, उनसे वारिवृष्टि होने लगती है और उन मेघों की गोद में बारबार दामिनि दमकती है- उस समय सहसा ही मेरे हृदय में श्रीराधा कृष्ण की लीला दर्शन की लालसा बलवती हो उठती है। स्वरूप ! यों तो उनकी लीलायें अनन्त हैं, किन्तु वर्षा काल के अभिसार की बात से ही ऐसे समय में मेरे प्राण पूर्णरूप से मत्त हो उठते हैं। श्रीमती का भाव भाषा द्वारा प्रकाश करना असम्भव है। किन्तु वही भाषा धन्य है जिसमें वह भाव लेश मात्र भी प्रकाश हो जाता है। श्रीमती कहती हैं:—

घटा घिरीं नभ दामिनि दमकत चलत पवन जल बरसत हैं घन।
पीतम अधिक अधीर मोहु सों प्रथमहिं पहुँच गये सुकुञ्ज वन॥
देखत देखत बाट अकेले व्याकुल होत होंयगे मो बिन।

सखि ! आज यह तरल जलधर रिम झिम रिम झिम वारि वर्षण कर रहा है, आकाश में घोर घन घटा छा रहीं हैं, बारम्बार बिजली चमक रही है, पवन तीव्र वेग से चल रहा है, ऐसे कठिन समय में मेरे प्राणप्यारे श्यामसुन्दर मेरी बाट देख रहे होंगे और मेरे बिना उनके प्राण व्याकुल हो रहे होंगे।

श्रीमती फिर कहने लगीं—"सखि ! ऐसे समय में मेरा घर में रहना क्या शोभा देता है ? मेरे ऊपर चाहे बिजली पड़े तो पड़ो, और

चाहे लोग कुछ भला बुरा कहें तो कहें, मैं अब घर में किसी प्रकार से नहीं रह सकती !" यह कह कर ही उन्मादिनी की तरह घर से बाहर निकल पड़ीं।

मग में कीच रात अँधियारी, दिग भ्रम पग पग होय।
पग लिपट्यो अहि पग पायल सम, जान परत है मोय॥
कैसी प्रीत रीत तव माधव, कहा बताऊं तोय।
प्रीत विवश अभिसार करैं जो, तासु मरन ध्रुव होय॥
देख वियोगिनि वन पशु भागत, नाहर हू डर खात।
फनि मनि दीप जान जब फूंकत, अहि फन मुख लग जात॥

प्रभु! अनुराग में यदि इस प्रकार का उन्माद न हो तो, विघ्न बाधाओं को पार कर श्यामसुन्दर का दर्शन करना बिलकुल ही असम्भव है और अनुराग की कुछ महिमा भी ऐसी है कि ये सब विघ्न, विघ्न ही ज्ञात नहीं होते। श्रीमती के निज मुख से ही यह बात प्रकाशित है:—

कर दरशन की लालसा, जात हूं जबहिं निकुंज।
अहि लिपटत मग पग उनैं, मानत नूपुर पुंज॥
विन निरखे घनश्याम की, मूरति ललित त्रिभंग।
चन्दन विष सम लगत है, भूषन लगत भुजंग॥

महाप्रभु—स्वरूप! चमत्कार, अनुराग का सौन्दर्य कैसा मधुर है। तुम्हारे प्रत्येक गान से और प्रत्येक बात से अमृत झर रहा है और मैं उसे निरन्तर पान कर रहा हूँ, किन्तु तृष्णा तनिक भी कम नहीं होती और भी अधिक बढ़ती ही जाती है। हां, इसके अनन्तर क्या हुआ? स्वरूप!

स्वरूप—श्रीमती राधिका श्रीकृष्ण के अनुराग में एक दम उन्मादिनी की तरह घर से बाहर निकल कर वन की ओर अग्रसर

होने लगीं, हाथ के कंकण, पग के नूपुर तो पहिले ही उतार डाले थे, माथे की चोटी खुल पड़ी, अन्त में वाह्यज्ञान-रहित होकर पागलिनी की तरह चकित नेत्रों से इधर उधर देखती भालती गमन करने लगीं, संग में ललिता थी—

यह कहते हुये स्वरूप का कंठ सहसा रुक गया, स्वरूप म्लान-मुख से दीर्घ निश्वास त्याग करते हुये मौन हो गये।

महाप्रभु स्वरूप के मुख की ओर देखने लगे। स्वरूप के डब-डबाये हुये दोनों नेत्रों से अश्रु बिन्दु गिरने लगे। कुछ क्षण के अनन्तर महाप्रभु उत्कंठित होकर कहने लगे— हाँ स्वरूप ! इसके अनन्तर फिर क्या हुआ ?

स्वरूप—इसके अनन्तर श्रीमती का चरण एक लता में अटक गया, और वे उसी समय भूमि पर गिर पड़ीं। ललिता ने रोते रोते पकड़ कर उनको उठा लिया। फिर वे उसी तरह उन्मादिनी के वेश में चलने लगीं। देह सब धूलि से धूसरित हो गया, मुख मंडल अश्रुजल से परिशिक्त हो गया, चारों ओर चकित और चमकित हो कर देखतीं थीं—

स्वरूप फिर हठात् मौन हो गये। महाप्रभु समझ गये कि, स्वरूप के हृदय में पूर्वस्मृती अतर्कित भाव से उमग उठी है और प्रत्यक्ष की तरह स्वरूप यातना से अधीर हो उठे हैं, इसीसे इनकी वाणी स्तम्भित हो रही है। स्वरूप ही तो ललिता हैं। कुछ क्षण के अनन्तर महाप्रभु कहने लगे—"स्वरूप ! ये सब बातें रहने दो। अब तुम अभिसार के मिलन का वर्णन करो।"

राय रामानन्द और वसु रामानन्द आदि अति विस्मित हो उठे। स्वरूप कुछ क्षण के अनन्तर स्वस्थ होकर कहने लगे— प्रभो ! अभि-सार के अनन्तर का मिलन अति मधुर होता है। अच्छा उस मिलन का एक गान गाकर ही प्रभु को सुनाता हूँ:—

कर अभिसार जबै हरि राधा, मिले दोउ इक संग।
मग को श्रम सब नसौ तुरत ही, बाढो मनमथ रंग॥
प्रीत भरी चितवनहिं परस्पर, निरखत युग मुख इन्दु।
मगन भये पुन दरशन सुख में, बढो प्रेम रस सिन्धु॥
कर अवलोकन भये पुलक तनु, छयो दृगन आनन्द।
गद गद भये बचन दुहु काँपत, भानु सुता नंदनन्द॥

महाप्रभु—अति मधुर-स्वरूप! अति मधुर। जैसा यातना-पूर्ण अभिसार था, वैसा ही मधुरोज्वल यह मिलन है। इस आनन्द को प्रकाश करने के लिये कोई भाषा नहीं है—यह सौन्दर्य माधुर्य, दूसरे मनुष्य को कह कर समझाने का कोई उपाय नहीं है। जो लोग तुम्हारे मुख से इस मधुर गान को श्रवण करेंगे, वे ही इस मिलन के महा-माधुर्य का आस्वादन कर सकेंगे। इस परिपूर्ण आनन्द में मग्न हो सभी नीरव हैं, कलकंठ कोकिल नीरव है, पीयूष रस पपीहा नीरव है, श्यामा नीरव है, शुकसारि नीरव हैं, क्योंकि स्वयं कृष्ण प्रेमाल्हादिनी श्रीराधिका और उनके अंकस्थ कुंजबिहारी भी नीरव हैं। नीरव निकुंज में श्रीश्री राधाकृष्ण का यह मधुर मिलन-विलास परम भाग्यवानों के ही आस्वादन योग्य है।

यह कह कर ही महाप्रभु मौन हो गये। उनका मुख मंडल आनन्द से उत्फुल्ल और अरुण हो उठा- उनके नयन युगल से मानों आनन्द की शतशत धारा प्रवाहित हो रही हैं। रामराय प्रभृति भक्त-गण ने अनेक दिनों से प्रभु के मुख मण्डल का ऐसा हर्षोत्फुल्ल भाव नहीं देखा था। रामराय प्रसन्न भाव से श्रीपाद स्वरूप की ओर इंगित कर श्रीश्रीमहाप्रभु का मुखमण्डल दर्शन कराकर धीरे धीरे कहने लगे—पंडित! तुम आज ही नीलाचल में स्वयं श्रीमती को ले आये हो, देखो! इस मुख की ओर देखो! मानों अनेक दिनों के अनन्तर अपने प्राण प्यारे को पाकर श्रीमती आनन्द में निमग्न हैं।

रामवसु कहने लगे—यह ठीक बात है। मेरा अनुभव अति सामान्य है। किन्तु आज श्रीप्रभु की मुख कान्ति में स्पष्ट रूप से राधा-भाव प्रस्फुटित हो रहा है। नीलाचल ब्रजमण्डल के रूप में परिणत हो गया है—ठीक वही सौन्दर्य, वही माधुर्य और उसी का अनन्त प्रवाह वह रहा है।

महाप्रभु उस समय भी वाह्यज्ञान रहित होकर मिलन-माधुर्य का आस्वादन कर रहे थे, कुछ काल के अनन्तर जब वाह्यज्ञान हुआ तब कहने लगे—स्वरूप ! तुम धन्य हो, आज तुमने मुझे कृतार्थ कर दिया।

स्वरूप—प्रभो ! कुछ क्षण के अनन्तर श्रीमती ने प्रेम गद् गद् कंठ से जो कुछ कहा था, वह भी मैं गान कर आप को श्रवण कराता हूँ—

सुनहु श्याम हे रसिक सुजान !
बिन देखे मुख इन्दु तुमारे, बीतत पल युगकोटिसमान ॥
प्रीति बिवश व्है आगे आई, लखि-लखि बाट विकल हे प्रान ।
तव दरशन सों नशे सकल दुख सफल भये मनमथ के बान ॥
हौं इक दुखिया, परवश, तापै गुरुजन ताने मारत तान ।
व्याकुल सदा रहत घर भीतर पिंजरबद्ध कीर सम मान ॥
मिले बडे भागन सों अब तुम मनकी बात कहत निज जान ।
है अब सब विध तव चरनन की नोछावर तन मन धन प्रान ॥

स्वरूप का गान समाप्त होते ही महाप्रभु बोल उठे—स्वरूप ! यह तो अमृत का भी अमृत है। रुके हुए प्रवाह में से मानों सहसा अमृत उथल पड़ा है। अनुराग की प्रबलता से अनुरागिणी श्रीमती राधिका का हृदय कुछ क्षण से रुक रहा था—उसका प्रथम वेग कम होते ही वह कलकंठ से कोमल कमनीय मधुर धारा प्रवाहित होने

लगी—श्रीमती हृदय खोलकर कहने लगीं—"हृदयेश्वर, जीवनवल्लभ, प्राणधन, रसिक सुजान! मेरे हृदय की बात सुनिये—मैं अब तुम को परित्याग कर क्षणमात्र भी नहीं रह सकती। तुम्हारा मुखचन्द्र तिलार्ध काल भी बिना दर्शन किये कोटियुग के समान प्रतीत होता है। अब जो अनेक समय आपके दर्शन नहीं हुए थे उससे जो मुझे यातना हुई है उसको मैं कहकर नहीं समझा सकती। तुम्हारे प्रति मेरा जो नव—अनुराग है उसके कारण मैं अधिक क्षण घर में स्थिर नहीं ठहर सकी, इसी से मैं पहिले ही आगई थी। मार्ग में अनेकों विघ्न बाधाओं को काटकर यहाँ आई हूँ। मार्ग को देखते ही प्राण आकुल हो उठे थे। मार्ग में अनेकों विघ्न, अनेकों यातनायें थीं—किन्तु उन्हें कुछ मैं अपने विचार में भी नहीं लाई—अब आपके दर्शन पाकर सभी दुख दूर हो गये। प्राण प्यारे! मैं अपनी दशा आप से क्या कहूँ, एक तो मैं अपने दुख से आप ही दुखी, परवश, तिसपर भी गुरुजन की गंजना। घर से बाहर निकलना अत्यन्त कठिन था, पिंजरा में बंद पक्षी की तरह सर्वदा अवरुद्ध रहती थी, सदा ही भय से प्राण काँपा करते थे। किन्तु अनेक पुण्यों के फल से, अनेकों कामना करके प्राणनाथ! आज आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं अब सत्य ही आप से अपने मन की बात खोलकर कहती हूँ कि, अब मैंने सब प्रकार से अपना तन, मन, धन, प्राण आपके चरणों की न्योछावर कर दीया है।" स्वरूप! श्रीमती राधिका के प्रेमपूर्ण सरल प्राणों का कैसा सुमधुर सरस और स्वाभाविक आत्म—निवेदन है! क्या कहते हो स्वरूप?

स्वरूप—हां प्रभु! यही ब्रजरस का यथार्थ भाव और यथार्थ भाषा है।

महाप्रभु—श्रीमती का इस प्रकार का निवेदन सुनकर रसिक-सिरोमणि श्यामसुन्दर ने क्या कहा?

स्वरूप—उन्होंने कहा—

सुन सुन प्राणप्रिये यह विनती, तुम ही मम जीवन धन प्रान।
तव अनुपम गुन मोह्यौ मो मन, हो तुम अमित गुनन की खान ॥
सुन तव बैन सुधा रस पागे, और सुनन कछु चहत न कान।
गौर बरन लखि रूप माधुरी, निरखन चहत नैन नहिं आन ॥
अंग सुगंध पाय मन मोहित, भये प्रान उन्मत्त समान।
तुम बिन सदा रहत व्याकुल मन, सुबल आदि साखी सब जान।

महाप्रभु—हां स्वरूप ! हुआ तो सही, परन्तु वैसा नहीं हुआ। हजार होने पर भी हैं तो पुरुष ही !

उत्कण्ठा

कुछ क्षण के लिये सभी मौन हो गये। श्रीमती राधिका के कोमल मधुर निवेदन की सुखमयी स्मृति उनके हृदय के पर्त-पर्त में स्फुरण होने लगी। कुछ क्षण के अनन्तर महाप्रभु कहने लगे-स्वरूप ! मैंने अपने मन में यह बिचार किया था कि, अब तुम लोगों को कुछ समय के लिये विश्राम करने दूं, किन्तु ऐसा नहीं कर सका—अभिसार का वर्णन सुना, और अभिसार के मिलन का वर्णन भी सुना, किन्तु अभी और एक बात स्मरण हो आई, उसे भी कुछ सुनना चाहता हूं। यह मैं पहिले ही कह चुका हूँ कि, मेरी इस तृष्णा की शान्ति नहीं है। जितना यह रस पान करता हूँ उतनी ही अधिक बढती जाती है। श्रीमती ने अभिसार के समय जैसी यातनायें सही थीं, उनका वर्णन करते समय तुम्हारे धैर्य का भी बांध टूट गया था--इस प्रकार की यातना के अनन्तर दोनों का मिलन अत्यन्त आवश्यक था और ऐसी अवस्था में मिलन भी अति मधुर होता है। किन्तु इस कठिन यातना-

मय अभिसार के अनन्तर श्रीमती उस एकान्त संकेत कुंजकुटी में पहुँचकर श्यामसुन्दर के दर्शन न पाकर उनके आने की आशा से वे कुछ समय प्रतीक्षा करतीं तो क्या उनकी और भी अधिक यातना-मय अवस्था हो जाती ?

स्वरूप—प्रभो ! वह काण्ड बडा कठिन है, किन्तु प्रेमरसमय की प्रेमलीलाओं का रहस्य ऐसा गूढ और गंभीर है कि, कभी-कभी ऐसी घटना भी हो जाती है।

एक दिन श्रीमती संकेत-कुंज-कुटी में, अभिसार कर पहुँचीं। आज जैसी वर्षा की घनघटा छारही हैं और घोर अँधेरी हो रही है, उस दिन ऐसी नहीं थी, किन्तु थी तो रात्रि ही। कितनी विघ्न-विपत्तियों को लात मारकर, कितनी यातना सहन कर श्रीमती सखियों को संग लेकर श्यामसुन्दर के दर्शन की लालसा से संकेत निकुञ्ज में पहुँचीं, वहाँ पहुँच कर देखा कि,शठशिरोमणि अभीतक नहीं आये हैं। श्रीमती ने फूल उतार कर सुन्दर माला बनाई, सुकोमल कुसुमशय्या रचनाकर एवं दीप प्रज्वलित कर प्राण प्यारे की प्रतीक्षा करने लगीं। पलपल पर समय बीतने लगा,किन्तु कृष्ण का पता नहीं। जिसके लिये लज्जा भय सब त्यागकर श्रीमती ऐसी घोर रात्रि में इस निविडवन में आंई, उनका पता तक नहीं। श्रीमती की छाती फटने लगी, वे फूट-फूटकर रोदन करने लगीं:—

कथित समयेऽपि हरिरहह न ययौ वनम्।
मम विफल मिदममलमपि रूप यौवनम्।
यामि हे कमिह शरण सखीजन-वचन-वंचिता॥
यदनु गमनाय निशि गहनमपि शीतलम्।
तेन मम हृदयमिदमसम--शर--कीलितम्॥
मम मरण मेव वरमति वितथ केतना।

किमिति विसहामि विरहानलमचेतना ॥
मामहह विधुरयति मधुर--मधुर--यामिनी ।
कापि हरिमनुभवति कृत सुकृत कामिनी ॥
अहह कलयामि वलयादि मणि–भूषणम् ।
हरि--विरह–सहन--वहनेन वहु दूषणम् ॥
कुसुम—सुकुमार—तनुमतनुशर—लीलया ।
स्रगपि हृदि हन्ति मामति विषम शीलया ॥
अहमिह निवसामि न गणित--वन--वेतसा ।
स्मरति मधुसूदनो मामपि न चेतसा ॥
हरि चरण शरण जयदेव कवि भारती ।
रसतु हृदि युवतिरिव कोमल कलावती ॥

स्वरूप ने जयदेव के इस पद को व्याकुल कंठ से ऐसे भाव रस से गान किया कि, सुन कर यही प्रतीत होता था; मानों श्रीमती राधिका स्वयं स्वरूप के हृदय में अवस्थित हो, रो रो कर अपनी वेदना प्रकाश कर रहीं हैं ।

महाप्रभु उत्कण्ठित होकर कहने लगे—रामराय ! श्रीमती की अवस्था तो देखो, जिनके दर्शन और समागम के निमित्त वे इतना क्लेश सहकर रात्रि के समय निर्जन–निकुंज में पहुँचीं, फूलों की माला बनाई, शय्या रचना कर प्यारे की प्रतीत्ता में वैठी रहीं, वे तव भी नहीं आये; इसीसे श्रीमती अधीर होकर कहती हैं—"सखि ! वताओ तो, अब मैं क्या उपाय करूं ? अब मैं किस की शरण जाऊं ? तुम सब ने आशा दी थी कि, चन्द्रोदय से पहिले ही हरि आमेंगे, देखो, आकाश में चन्द्रोदय तो हो गया, किन्तु मेरे हृदय–आकाश के कृष्ण-चन्द्र तो अभीतक दिखाई नहीं पडे । हरि मेरे मन को चुराकर ले गये हैं,

मालूम होता है इस वन में वे लौटकर नहीं आवेंगे, तब तो मेरे इस निर्मल रूप यौवन का क्या फल है ? तुम्हारी बातों का तो अब मुझे विश्वास नहीं है, तब बताओ अब मैं किस की शरण ग्रहण करूं ? जिनसे मिलने के लिये इस घोर रात्रि में इस गहन वन में आई, उन श्रीकृष्ण ने मेरे हृदय को मदन-शर से वेधकर केवल क्लेश दिया। सखि ! अब मेरा मरण ही उचित है, वृथा अब इस असार शरीर को विरह की अग्नि से क्यों जलाऊं ? हरि अबतक नहीं आये, केवल इसी बात से मेरा मन अधीर नहीं है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि, मैं अत्यन्त अभागी हूँ, मेरे ऐसे कौनसे पुण्य हैं जिनसे मैं उनको पा सकूंगी ? पहिले पुण्य कर्मों के बिना क्या उनको कोई पा सकता है ? जिसके अच्छे भाग्य हैं, उसी सुन्दरी को वे मिलगये; इसी से वे यहां नहीं आये। हरि उसके संग के लिये सुख में मग्न हैं। मधुर रात्रि में सभी को सुख होता है, दुख केवल मुझ अभागिनी ही के भाग्य में लिखा है।"

"यदि श्यामसुन्दर नहीं आये तो, मेरे इन आभूषणों की क्या आवश्यकता है, हरि-विरह-अनल से जिसका देह मन प्राण सर्वदा जलता रहे, उसे फिर आभूषणों की क्या आवश्यकता है ? मेरे गले की फूलों की माला भी मुझे अब ज्वाला सी लगती है, इसको भी मैं अब धारण करने में असमर्थ हूं। अनंग के वाणों का प्रभाव तो देखो, मेरे शरीर में बिना घाव किये ही कितना कष्ट दे रहे हैं। और मेरी वुद्धि तो देखो, हरि मुझे मन से भी स्मरण नहीं करते, और मैं उनके लिये यहां वन में वैठी हूँ" यह कहकर श्रीमती रोदन करने लगीं।

रामराय ! श्रीमती की उत्कण्ठा वास्तव में बहुत ही असह्य है। उत्कण्ठा के साथ एक तीव्र असहनशीलता के भाव ने मिलकर श्रीमती को बिलकुल ही अधीर बना दिया, क्या कहते हो रामराय ?

रामराय—हां प्रभु ! जयदेव का यह पद वसन्त ऋतु के लिये वना है, इस समय के लिये नहीं है।

स्वरूप—यह तो मैंने पहिले ही कहा था। राय महाशय! अच्छा, अब और एक पद सुनिये:—

वरसत वारि भुजंगभरो मग, इम वहु विघ्न अपार।
लातमार कुल कान सु मैं नें, कियो कुंज अभिसार॥
आधीरात भई अबहु नहि, आये सुन्दर श्याम।
कहा पाप कियो सखि! जासों, भयो विधाता वाम॥
विविध आश ममभई नाश, कर श्याम मिलन अभिलाष।
नहिं जानूं वे फँसे कौन के वाँह भुजंगनि फाँस॥
यहां मदन जारत हीयो, घर गुरुजन गारी देत।

गाते-गाते स्वरूप एकदम मौन हो गये।

रामानन्द—यह पद तो भावपूर्ण और हृदय ग्राही है। क्या कहते हैं प्रभु?

महाप्रभु—व्रजलीला की बात व्रजभाषा ही में अच्छी खुलती है। परन्तु अर्ध व्रजभाषा में भी मधुरता है।

रामानन्द—यह तो ठीक ही है, किन्तु इसके अतिरिक्त और भी एक कारण है; प्रेम-स्वरूप का प्रेम-प्रवाह व्रजधाम में ही अधिक वेग से प्रवाहित है। व्रजभाषा के कवि मानों व्रजलीला के प्रत्यक्ष दर्शी हैं। शुद्ध व्रजभाषा का न होने पर भी यह पद मन को मोहित करता है।

स्वरूप हँसकर कहने लगे--किन्तु मेरे मन का एक पद और भी है। मैं इतने सहज में ही उस शठ शिरोमणि श्यामचन्द्र को नहीं छोड सकता। राय महाशय! अब मेरे मन का भी एक पद सुन लीजिये:—

श्याम मिलन हित अति अँधियारी, जाग विताई रात।
अब यह निश्चय जान गई सखि! पुरष निठुर है जात॥

गरजत घन पुन दादुर बोलत करत झिल्ली झंकार।
दामिनि दमक देखि सखि! छिन छिन होत हीये टंकार ॥
अति ही जतन सों माल बनाई नहिं अब गंध सुहात।
छटपटात मन, बिरह अगन पुन जारत मम सब गात ॥
मन की आग मनहिं मन जारत परत न हिय में चैन।
कर कर याद चरित उनके सखि! रोवत हूं दिन रैन ॥

राय महाशय! यह गान क्या ठीक नहीं है? केवल समय के उपयोगी होने से ही काम नहीं चलता, श्रीमती के भाव के अनुरूप भी होना चाहिये। श्रीमती को इतना कष्ट देकर संकेत निकुञ्ज में बुला कर फिर उनको दर्शन न देना, क्या किसी सुजन मनुष्य का कर्म है? श्रीमती ने कोमल कुसुमों से शय्या रचना की। श्यामसुन्दर को फूलों से सुसज्जित करने के विचार से सुन्दर सुन्दर फूलों की माला निर्माण की, उनके आने की आशा से समस्त रात्रि जगती रहीं, किन्तु शठ-शिरोमणि आये ही नहीं, जिनके लिये ये इतने कष्ट से भी अभिसार कर निभृत निकुंज में रात्रि व्यतीत करने लगीं, उनको एक बार भी इनका स्मरण नहीं हुआ। बताओ तो—यह कैसी निठुरता है? इससे किस के मन में संदेह नहीं होगा? श्री राधिका पहिले यह नहीं जानती थीं कि, वे जिनके लिये कुल-मान-मर्यादा सबको छोड़ कर इस घोर रात्रि के समय बन में आई हैं, वे केवल शठ और निठुर ही नहीं हैं, किन्तु वहुवल्लभ भी हैं। यह कैसा अनर्थ है?

महाप्रभु अत्यन्त दुखित होकर कहने लगे—स्वरूप! यह ठीक बात है। इसमें अनर्थ क्यों न होगा? सहन करने की भी एक सीमा है। सुनायिका सभी कुछ सह सकती है—लोकचर्चा, गुरुजन की गूंजना, अपमान सूचक धिक्कार, अनिद्रा, अनाहार आंधी-मेह-बिजली आदि का उपद्रव—सभी हँसते हँसते सह सकती है, केवल नहीं सह सकती है - शठता और अन्य संग की आशंका। ऐसे

समय में जो कुछ भी अनर्थ हो, उसमें आश्चर्य भी क्या है ? उसके अनन्तर क्या हुआ, स्वरूप !

स्वरूप—उसके अनन्तर श्रीमती राधिका कुसुमशय्या और पुष्पमालाओं को यमुनाजल में बहाने को तैयार हो, उत्कण्ठित मन से यह कह कर रोदन करने लगीं--

डार श्यामगल बांह सखी मैं, रैन बिताऊंगी।
कर प्रसन्न मन तासु हिये में, अति सुख पाऊंगी॥
कर यह निश्चै रचो चाव सों, आशा को मंदर।
काउ निगोडी वैरन नें जर, ढायो घर सुंदर॥
प्यारे को संकेत पाय यह, स्वांग रचायो री।
वृथा भयौ अब सब विध सजनी, मन को भायो री॥
उदय भयो नभचन्द सु बोलत, कोकिल मदमातो।
जों जों बीतत रात शोच सों, फाटत है छाती॥
अतिहि सुगंधित सेज बनाई, और मालती माल।
बिन प्यारे के वृथा भयो श्रम, दशा भई वे हाल॥
पापी प्रान नाहिं निकसत हैं, आश करत काको।
होनीं हो सो सब हो लीयो, है अब का बाक़ी॥

श्रीमती की इस उत्कण्ठा का वर्णन करने के लिये कोई उपयुक्त भाषा ही नहीं है। यातना क्या कुछ कम है ? घोर रात्रि का समय, उसमें भी निर्जन वन भूमि, श्यामसुन्दर के आने की बाट देखती हुई श्रीमती दोनों कान लगाकर उनकी चरण-ध्वनि की प्रतीक्षा कर रही हैं वृक्षों से ओस की बूंदें पत्तों पर टपक कर जो शब्द होता है, उसको सुनकर भी ऐसा मालूम होता था कि, मानों कृष्ण आही गये। किन्तु कहां आये ? कृष्ण का पता नहीं, पल-पल करके समस्त

रात्रि इसी आशा में-इसी प्रतीक्षा में इसी उत्कण्ठा में व्यतीत हो गई और कृष्ण नहीं आये, ऐसी आशा में ऐसी निराशा--श्रीमती का ही हृदय था जो इसको सहन कर सका--अन्यथा ऐसी दशा में पाषाण भी होता तो फट जाता। यह कहते-कहते स्वरूप का वाक्य गद्गद् हो गया और कंठ रुक गया।

महाप्रभु के नेत्रों से भी अश्रुपात होने लगा। कुछ क्षण के अनन्तर भाव को रोककर मृदुस्वर से कहने लगे--स्वरूप! इसके पीछे क्या हुआ?

स्वरूप ने नयन जल पोंछकर अति मृदु कण्ठ से गान आरम्भ कर दिया:—

दोऊ कान लगाय नवेली, वाट लखत पीतम की।
चौंक उठी तवही नभ में जब, प्रात किरन चमकी॥
टपकत ओस बूंद पातन पै, कहत सखिन सों प्यारी।
वाहर जाय लखो तुम सजनी, आवत का वनवारी॥
पुन व्याकुल व्है कहत किशोरी,प्रान नाथ नहिं आवत।
माथो फोड़ मरूं पाथर सों, अब जिय में यह भावत॥
फूलन की सखि! सेज सजाई, माल वनाई हित सों।
वासी भई डार यमुना में, उतर गई अब चित सों॥
चोवा चन्दन कुंकुम केशर, लगत गरल सम मन में।
वीड़ी विरस लगत मुख माहीं, फूल शूल सम तन में॥
अव सव डार देउ यमुना में, देख फटत है हीयो।
दूर करो सिंदूर भाल सों, काजल जो दृग दीयो॥
नहिं राखूं यह प्रान निगोड़े, मुख अब नाहिं दिखाऊं।
कहत सखी धीरज धर राधे, अवही उनकू लाऊं॥

स्वरूप ने रोदन के स्वर में स्वर मिलाकर अश्रुपात करते हुये गान समाप्त किया; रामानन्द प्रभृति सभी व्याकुल होकर रोदन करने लगे। महाप्रभु अपने अश्रुजल को मार्जन कर गद्-गद् कंठ से कहने लगे--स्वरूप! बस करो, अब नहीं सुना जाता। इस दारुण अवस्था में क्या किसी सखी ने श्रीकृष्ण के पास जाकर यह सब संवाद उनको सूचित किया था?

स्वरूप—इस दारुण उत्कंठा का संवाद लेकर दूती श्रीकृष्ण के समीप जाही रही थी कि, मार्ग में उसने देखा कि, वहु वल्लभ श्याम-सुन्दर डरते-डरते श्रीमती राधिका की निकुंज को आरहे हैं। दूती घवडा कर कहने लगी:—

बाट बिलोकत बिकल नैन सों, बीत गई रजनी सब।
श्वास लेत घन धर कपोल कर, जीवन भार भयो अब॥
जामिनि जाग बिताई सारी, कामिनि रह संकेत।
बोलत गद् गद् बैन, सुलोटत, धरणी होय अचेत॥
निरख नील नभ तव भ्रम करके, मांगत विध सों पंख।
या विधि आश अनेकन करकर, जीवन भयो सशंक॥
सुनतहि नाम और गुन तुमरे, पुलकित होत शरीर।
माधव! आशा दै क्यों राखी, तुम बिन रहत अधीर॥

महाप्रभु—नायक चूडामणि अवश्य ही कुछ डरते डरते अपराधी की तरह श्रीमती के सन्मुख उपस्थित हुये होंगे?

स्वरूप—हां, प्रभु! डरते डरते अपराधी ही की तरह गये थे। वहाँ पहुँच कर उनका श्रीमती के मुख की ओर देखने का साहस नहीं हुआ। नीचे को मस्तक कर चरणों की ओर देखने लगे। श्रीमती ने भी अंचल की ओट में तिरछी चितवन से उनकी ओर देखा, देखते ही ईर्षा से, रोष से और दुख से एक वार ही मर्माहत हो उठीं। जो अनु

राग अभिसार के आकार में सिंधु प्रवाह की तरह उमड़ कर श्याम सुन्दर की ओर चला था उसमें बाधा पड़ गई। इस बाधा का कारण यह है कि, प्रेम सोलहों आना प्राण चाहता है, प्रेम हिस्सा बाँट नहीं समझता, युक्ति तर्क नहीं जानता—अवकाश अनवकाश नहीं मानता, दूसरे का मन प्रसन्न करने के लिये सभ्यता व कर्तव्यता प्रेम के पास नहीं ठहर सकती। लोग यह कहावत भी कहा करते हैं:—

"यही एक प्रेम की बान, चाहत सोलह आना प्रान।"

श्रीकृष्ण का श्रीराधिका में जो अनन्य प्रेम था उसमें उनको संदेह हो गया, संदेह का कारण भी स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा था, श्रीकृष्ण की ओर देखते ही वे समझ गईं; इसीलिये श्याम-दर्शन के अभिसार श्रोत में वाधा पड़ गई। इससे अभिसार के अन्तिम परिणाम में प्रतिवन्ध अवश्य हुआ, अर्थात् श्रीमती के मिलन में व्याघात पड गया, किन्तु श्रीमती के हृदय में वह रुका हुआ प्रेम उमग उठा। सिंधु गामिनी खर-प्रवाहिनी नदी के प्रवाह के सन्मुख जब सहसा कोई वाधा आ जाती है, तब प्रवाह के मूल स्थान में अर्थात् श्रोत में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती, उसका वेग अदम्य होता है। किन्तु प्रवाह की गति रुकने से वह अपने पूर्ण वेग से उमग कर बहने लगती है। प्रेम प्रवाह की वाधा में भी प्रतिरुद्ध प्रेम हृदय में उमग उठता है। अभिसारिका, वासकसज्जा, एवं उत्कंठिता श्रीमती राधिका के प्रेम ने बहु वल्लभ श्रीकृष्ण के इस व्यवहार से अन्य आकार धारण कर लिया। इस का नाम है "मान"। ब्रज रस में मान एक चमत्कार व्यापार है।

मान

महाप्रभु अनमने चित्त से श्रीस्वरूप दामोदर की मान तत्व की विचार पूर्ण व्याख्या श्रवणकर रहे थे। व्याख्या समाप्त होते ही कहने लगेः--स्वरूप! उस वार रथयात्रा के समय तुम्हारे मुख से ब्रज के मान का वर्णन कुछ-कुछ सुना था, वही इस समय स्मरण हो आया--तुमने धीरा-अधीरा श्रीमती राधिका की वक्रोक्ति का वर्णन करते हुए कहा था कि--

"ब्रज गोपिन को मान, मधुर रस को निदान है"

यही बात आज सहसा मन में जाग उठी। मान की सूचना देने के समय तुमने एक पद गान किया था--

आओ-आओ प्यारे! मम नैनन के तारे,
कहो? रात तो बीती सुखसों।
कर मेरो संग त्याग, सौतन के संग जाग,
कैसो सुख भयो? कहो मुखसों॥

* * * * * * *

इत जाग कोरे नैन, रोय काटी सब रैन,
कहो? उत तो चैन सों बीती।

यही गान तो गाया था?

स्वरूप—हां प्रभु! यही गान था, अब मुझे भी स्मरण हो आया। किन्तु इस भाव के दूसरे क्षण में ही श्रीमती का भाव अन्य-प्रकार का हो गया, वे घृणा का भाव प्रकाश कर फिर कहने लगीं—

छीयो जिन तन श्याम, रहो अब दूर सदां ही।
श्रीमुख शोभा लखो तनक तुम दरपन मांही॥

दृग काजर मुख आय लगो कारेपै कारो।
सो मुख लखो प्रभात, जाय दिन कैसो सारो ?

महाप्रभु--दारुण मर्मव्यथा के कारण कैसी बांकी बात कही है। हां, इसके अनन्तर फिर क्या हुआ ? स्वरूप !

स्वरूप--यह सुनकर श्रीकृष्ण अत्यन्त लज्जित हो अपने भाव को गोपनकर कृत्रिम अनुराग निष्ठा का अभिनय करने लगे। अनेक प्रकार से श्रीमती को शान्त करने की चेष्टा करने लगे। किन्तु उनकी किसी बात से भी मानमयी श्रीमती का मन नहीं फिरा। वे स्पष्ट रूप से कहने लगी-"तुम वहुवल्लभ हो, यह बात मैंने बहुत दिनों से सुन रखी थी, परन्तु दूसरों के मुख से ही सुनी थी--आज वह प्रत्यक्ष देखली--अब अधिक बातें क्यों करते हो ? तुम को दूर से ही दण्डवत है !--यह मैं अच्छी तरह जानगई कि, तुम मेरे नहीं हो--मैं तुम्हारे इंगित से कुल, मान, मर्य्यादा, धन, जन, धीरज, धर्म सब छोड़ कर, केवल तुम्हारे दर्शनों के लिये घोर रात्रि के समय इस निर्जन वन में आई। और तुम मुझे भूल कर न मालूम कहां थे ? अब मैं तुमको भली भाँति पहिचान गई। तुम को दूर से ही अब दण्डवत करती हूं। खूब समझ गई, तुम निश्चय मेरे नहीं हो।" यह कह कर मानिनी श्रीमती राधिका नेत्रों में अश्रु भर, मुख पर घूंघट खींच श्रीकृष्ण की ओर से फिर कर बैठ गईं।

महाप्रभु-श्रीमती का मान होना तो ठीक ही है, क्यों रामराय ? "मैं तुम्हारे लिये सब परित्याग कर वन में आया, और तुम मुझ को बिलकुल ही भूल गये" इससे यह मान किस को न होगा ?

रामवसु-- तब तो प्रभु ! इस प्रकार से हम लोगों को भी मान हो सकता है। हम लोग गृहस्थ हैं, घर छोड़ कर, घर के सब काम काज छोड़ कर--आपके दर्शनों को यहाँ इतनी दूर आये हैं और आप सर्वदा अपने ही भाव में मग्न रहते हैं। हम लोगों से दो एक बातें

भी नहीं करते। बतलाइये तो, ऐसे समय में हम लोगों को भी मान क्यों न हो ?

महाप्रभु—रामवसु ! यह तो मैं पहले ही कह चुका हूँ कि, मैं तुम लोगों का अपराधी हूँ; मुझे क्षमा करना चाहिये।

रामवसु-आप यह क्या कहते हैं ? ऐसी बात भी क्या सेवकों से कहना उचित है ? मैंनें तो, केवल एक बात की बात कही थीं। खैर, मैं अपनी बात को लौटाये लेता हूँ। स्वरूप महाशय ! अब आप फिर उसी मान की ही बात कहिये—

"वहत अपूरव सुधा नदीसी तव शुभ मुख सों"

स्वरूप—मान एक बड़ा विचित्र व्यापार है। श्रीमती का मान क्रमशः कठिन हो उठा, उनने यह दृढ प्रतिज्ञा कर ली कि, मैं अब श्यामसुन्दर का मुख कभी नहीं देखूंगी। जो श्रीकृष्ण के दर्शन न होने पर उनके नाम और गुणों को ही स्मरण कर अपने मन को शान्त करने की चेष्टा किया करती थीं, वे ही आज प्राणों के प्राण हृदय-वल्लभ को अपने पद प्रान्त में वैठ कर अनेक प्रकार से विनय करते हुये देख कर भी हृदय पर मानों मान का पाषाण धर कर अति-गम्भीर भाव से वैठी हैं। निरन्तर कृष्ण नाम करने वाली रसना आज उपेक्षा के सहित कृष्ण नाम ग्रहण करने में मौन है। योगीन्द्र-मुनीन्द्र गण महायोग साधन करके भी जिन को प्राप्त नहीं कर सकते हैं, वे आज ब्रजवाला के चरण तल में पड़ कर अनेक अनुनय विनय करके भी उसके मुख से एक शब्द सुनने के लिये व्याकुल हो रहे हैं। इसका वर्णन मैं क्या करूँ, एक गान गाता हूँ इसे श्रवण कीजियेः—

वदसि यदि किंचदपि दन्तरुचि कौमुदी,
हरति दर-तिमिर मति घोरं।
स्फुर दधर-सीधवे तववदन--चन्द्रमा,
रोचयति लोचन-चकोरम्॥

प्रिये चारुशीले मुंच मयि मान मनिदनाम्।
सपदि मदनानलो दहति मम मानसं,
देहि मुख--कमल मधु पानं ॥
सत्य मेवासि यदि सुदति मयि कोपिनी,
देहि खरनयन शर घातम् ।
घटय भुजबंधनं जनय रद खंडनम्,
येन वा भवति सुख जातम् ।
त्वमसि मम भूषणं त्वमसि मम जीवनम्,
त्वमसि मम भवजलधिरत्नम् ।
भवतु भवतीह मयि सतत मनुरोधिनी,
तत्र मम हृदय--मति यत्नम् ॥
नील नलिनाभ मयि तन्वि तव लोचनम्,
कृष्ण मिद मेत दनु रूपम् ।

× × × ×

स्थल कमल गंजनं मम हृदय रञ्जनम्,
जनित--रति--रङ्ग--परभागम् ।
भण मसृण--वाणि करवाणि चरणद्वयम्,
सरस लसदलक्तक रागम् ॥
स्मर गरल खण्डनं मम शिरसि मण्डनं,
देहि पदपल्लव मुदारम् ।

स्वरूप का गान समाप्त होते ही रामानन्दवसु विस्मित हो बोल उठे—सुनो तो राय महाशय ! यह क्या हुआ ?—एक बार ही चरणों में गिर पड़े !

रामराय—हाँ भाई, यही तो मैं भी देख रहा हूँ ! यह क्या बात है, स्वरूप महाशय ?

स्वरूप—इस बात को कौन नहीं जानता है—यह है प्रेम का प्रायश्चित्त !

महाप्रभु—केवल चरणों में गिर कर ही इस पाप का प्रायश्चित्त पूर्ण नहीं हुआ; निकुञ्ज से बाहर भी निकाल दिये गये ।

रामवसु—श्रीमती का मान कैसा कठिन है ।

रामराय—मान तो कठिन है ही, परन्तु मान का कारण उससे क्या कम है । राज नन्दिनी श्रीमती राधिका अपनी मान, मर्य्यादा, कुल, शील एवं लज्जा आदि सब परित्याग कर, अनेक प्रकार के शारीरिक क्लेश सह कर, सैकड़ों विपद अपने शिर पर धर कर केवल एक वार श्यामसुन्दर का मुखचन्द्र निरखने को घर से आईं थीं और श्यामसुन्दर ने सारी रात में एक वार भी इनकी खबर नहीं ली; यह क्या कुछ कम अपराध है । ऐसी दशा में चरणों में गिरना क्या कोई बड़ी बात है ? यह तो ब्रजरस की रीति के अनुसार उनका कर्तव्य ही है ।

स्वरूप—उन में इतना कर्तव्य ज्ञान है, यह क्या प्रशंसा की बात नहीं है ?

महाप्रभु—नहीं स्वरूप, यदि ऐसा है तो, कुछ भी नहीं है । केवल कर्तव्यतावश चरणों में गिरना कोरा गिरना है । श्यामसुन्दर यह बात अपने मन में भली भाँति समझ गये थे कि, मैंने श्रीमती के कोमल प्राणों में व्यर्थ आघात पहुँचा कर उनको दुखी किया है, इसी लिये श्रीमती के दुख से भी अधिक दुख उनके प्राणों में हुआ था । इसीसे उननें प्रेम विवश हो श्रीमती के चरणों में मस्तक धर अपने नयन जल से उनके चरण धोये थे । त्रिभुवन पति होकर भी वे भक्ति के वश में हैं, प्रेम वश में हैं, उनके विशाल ऐश्वर्य में महामाधुर्य का प्रमाण है । केवल दया जिनमें है, उनको भी ऐसे समय में चरण पकड़ कर क्षमा माँगना उचित है । और जो दयामय, प्रेममय, एवं

रसमय हैं ऐसी दशा में चरणों में पड़कर उनकी क्षमा प्रार्थना अति सुन्दर और अति मधुर होती है।

रामवसु—यह तो ठीक ही बात है प्रभु ! यह तो उनने अच्छा ही किया, किन्तु श्रीमती ने उस समय अपने प्यारे को उठा क्यों नहीं लिया ? श्यामसुन्दर की प्रार्थना यह थी कि—मानिनी, मैं निरपराध हूँ, मुझ से मान मत करो, एक वार तो बोलो, मैं तुम्हारे श्रीमुख के एक शब्द मात्र का भिखारी हूँ। तुम्ही मेरा जीवन हो, तुम्ही मेरा भूषण हो, तुम मेरा भव सिन्धु का रत्न हो, तुम्हारे अतिरिक्त मेरा और कोई नहीं है, केवल दया करके एक शब्द तो कहो। तुम्हारे चरण मेरे मस्तक के आभूषण हैं। मैंने कोई अपराध नहीं किया, मुझे नहीं मालूम है कि, मेरा क्या अपराध है, यदि कोई अपराध हुआ हो तो, अपने चरण मेरे मस्तक पर धरो। तुम्हारे प्रसन्न श्रीमुख के दर्शन को ही यहाँ आया हूँ, इस श्रीमुख की दो एक बातें सुनने को ही व्याकुल हो कर यहाँ आया हूँ, एक शब्द तो मुख से कहो—और अपने श्री-चरणों में मुझे स्थान प्रदान करो।

यह कह कर ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर ने रो-रो कर नयन जल से अपने कपोल और श्रीमती के युगल चरण भिजो दिये, किन्तु मानिनी ने तनक फिर कर भी नहीं देखा-अपना चरण हटा कर और फिर कर बैठ गईं, तनिक भी दया नहीं आई। इसके अनन्तर श्याम-सुन्दर को उसी क्षण निकुंज से निकाल देने की आज्ञा हुई।

स्वरूप—हाँ वसु महाशय ! इस लीला का यही महात्म्य है। एक मनुष्य जब पुकार-पुकार कर हार जाय, पुकारने पर भी उसे कोई उत्तर न दे, तब वह मान के अभिमान से मौन हो जाता है—उस समय दूसरी ओर का चिल्लाने पुकार ने का ओसरा आता है। व्याकुल भक्त के आकुल प्राणों की पुकार जब बन्द होती है तब भगवान् की पुकार आरम्भ होती है; किन्तु भक्त फिर कोई उत्तर नहीं देता-कृतज्ञ भगवान् भी सहज में भक्त को छोड़ने वाले नहीं हैं। वे बड़े प्रवल

पकड़ने वाले हैं, आवश्यकता हो तो, भक्त के द्वारपाल बन जाते हैं, भक्त के चरणों में मस्तक धरने से भी पश्चात्पद नहीं होते। जब कि, भक्तों के सम्बन्ध में ही उनका ऐसा नियम है, तब महाभाव स्वरूपिणी श्रीमती राधिका के प्रेम की तो बात ही क्या है ?

रामवसु—स्वरूप पण्डित ! यह तो हुआ सो हुआ। किन्तु निकुंज से बाहर क्यों निकाले गये ?

स्वरूप—इसी को दुर्ज्जय मान कहते हैं। जहाँ पर प्रेम जितना गम्भीर होता है, वहाँ पर मान की तरंगें भी उतनी ही अधिक उठतीं हैं। महा-प्रेम में महा-मान होता है। बात बात में मान, कारण अकारण में मान...और उस महा-मान में महा-तरंगें उठती हैं। इन्हीं तरंगों के प्रतिघात से वहिष्कार होता है। कोई बात नियम के विरुद्ध नहीं है।

महाप्रभु—लोग समझते हैं कि, प्रेम में नैम नहीं होता, किन्तु स्वरूप ने अच्छी तरह समझा दिया कि, प्रेम में भी नैम (नियम) होता है। वसु महाशय ! समझे तो ?

रामवसु—बात तो ठीक है। किन्तु कार्य्य बड़ा कठिन और असह्य है। कुसुम कोमला सखीगण तो, बड़ी दयामयी थीं, उन्होंने श्यामसुन्दर के पक्ष की क्या कोई बात भी नहीं कही ?

स्वरूप-कहने सुनने में क्या किसी ने कुछ कमी की थी। श्यामसुन्दर ने निकुंज से निर्वासित होकर रोते-रोते सखियों से अनुरोध कर उनके द्वारा अनेक अनुनय विनय कराया, किन्तु श्रीमती का दुर्जय मान किसी प्रकार से कम नहीं हुआ। अन्त में श्यामसुन्दर निराश हो श्रीराधाकुण्ड की ओर चले गये। श्यामसुन्दर की यह दशा देख सखियों के चित्त में बहुत ही कष्ट हुआ। उस समय ललिता श्रीमती के समीप आकर क्रोध से कहने लगीं:—

प्यारी का चाहत अब आन ?
चरण शरण हरि आये तबहू, नहिं छांड़त है मान ॥
जाने गोवरधन धर कर पै, व्रज के राखे प्रान।
विरह छीन व्है ताने त्यागे, कर कंकन गुरु जान ॥
जाने निज चरनन सौं नाशो, काली को अभिमान।
सोही अब तव पदतल लोटत, छांड़ सकल कुल कान ॥
चातक सहज प्रीत नहिं छांड़त, नहिं बैठत तट आन।
घन जल विना नीर नदियन को, करत न तनकहु पान ॥
करम दोष सौं अति प्यासो व्है, पीवे कर संधान।
तबहू प्रिय को नाम न छांड़त, करत रहत गुन गान ॥
सुन-सुन राधे ! कृष्ण-कामिनी, अब क्यों करत गुमान।
प्यारो तेरो चेरो तो विन, भावत और न आन ॥

अब भी श्रीमती के मान की शान्ति नहीं हुई। वे रुष्ट होकर कहने लगीं—सखी ! अब तुम मेरे सामने उनका नाम मत लो, मेरा मान कुल, शील, धर्म्म सभी नाश हो गया, अन्त में यह दुर्दशा भोगिनी पड़ी। अब तुम उनकी, बातें मत करो, नहीं तो तुम मुझे यहाँ नहीं देख सकोगी। कह कर श्रीमती मस्तक अवनत कर रोने लगीं।

कुछ क्षण के अनन्तर विशाखा ने आकर कहा प्यारी ! अब तुम को घूंघट की ओट में मुख छिपा कर रोने की आवश्यकता नहीं होगी। श्यामसुन्दर रोते-रोते न मालूम कहाँ चले गये, खोजने पर भी उनका पता कहीं नहीं मिला। मालूम होता है, वे अब नहीं आवेंगे। अब शान्त हो जाओ।

रामवसु—श्रीराधागोविन्द की लीला में सखीगण का कार्य्य बड़ा ही विचित्र है, जहाँ जैसी आवश्यकता होती है, वहाँ वैसी ही

चाल चलती हैं। बिगाड़ने में भी प्रवीण हैं, और बनाने में भी प्रवीण हैं, अच्छा इसके अनन्तर ?

स्वरूप—"श्रीकृष्ण अब नहीं आवेंगे" यह सुनते ही श्रीमती मुख से घूंघट हटा कर घबड़ा कर कहने लगीं—यह क्या कहती है सखी, अब क्या वे नहीं आवेंगे ? क्या वे बिलकुल ही मुझे छोड़ कर चले गये। जो मुझ को इतना प्यार करते थे, वे एक इतनी सी बात पर मुझे छोड़ कर चले गये। तुम्ही सब तो यह कहा करती हो कि, उनने गोवर्द्धन धारण कर ब्रज की रक्षा की थी। जो गोवर्द्धन धारण कर सकता है ? क्या वह एक अबला बाला का तनिकसा मान नहीं सहन कर सकता है, और तुम सब भी कैसी हो, मैं तो अनजान हूँ, मैंने क्या कहा क्या किया, भला तुम सब भी तो यहीं थीं। तुमने उनको जाने क्यों दिया ? अब जाओ, जल्दी उनको लाकर मेरे प्राण बचाओ।

रामवसु--सखियों को कैसा संकट है।

महाप्रभु--इसको संकट भी कह सकते हो और आनन्द-रंग भी कह सकते हो; यही तो सखियों का काम है।

रामवसु--काम कुछ छोटा नहीं है, हाँ, स्वरूप महाशय ! इसके अनन्तर ?

स्वरूप–इस के अनन्तर विशाखा निकुंज से बाहर निकलीं और थोड़ी देर में आकर दुखित मन से शुष्क मुख से कहने लगीं--अब क्या वे मिल सकते हैं ? इतने अपमान पर भी क्या कोई जीवित रह सकता है ? श्याम स्वयं अपराधी की तरह अति नम्र भाव से डरते हुये यहाँ आये, अनेक क्षण रोते रहे, बारम्बार चरणों में गिरे, तब भी मान नहीं टूटा। दो घड़ी यहाँ उनको ठहरने भी नहीं दिया, उसी समय निकुंज से बाहर निकाले गये। दुख से अपमान से अब वे कहाँ चले गये, क्या हुआ उनको अब हम सब कहाँ तलास करें ?

प्यारो खड़ो रह्यो कर जोड़ कै, विनती करी अनेकन वार ।
तबहू तनक न फिर कै देखो, है तू वड़ी कठिनरी नार ॥
नागर श्याम जगत दुर्लभ अति, कहा बात की कमती ताय ।
तोसी सती कामिनी कितनी, दासी व्है धावत हैं वाय ॥
जब निरखत हैं मोर मुकुट अरु, वांकी चितवन की उनहार ।
तोसी कितनी कुल कामिनि नित, टकरावत हैं ताके द्वार ॥
कर गुमान मो सौं विन पूंछे, अपनो सुख सब त्यागो आप ।
सुख सौं मारी आप कटारी, अब क्यों करै रोय संताप ॥
मन की आग मनहि मन जारत, बुझने को अब कहा उपाय ।
चले गये नव जलधर श्यामहु, तब का विध में लाऊँ बुलाय ॥

—०—

कलहान्तरिता

श्रीमती इस संवाद को सुन कर अत्यन्त व्याकुल हो उठीं। उनके दुख और अनुताप की सीमा नहीं रही, मानों सहसा उनको चेतना हुई। वे कहने लगीं—सखी, मैंने यह क्या किया ? मेरी यह कुमति हो गई। अंचल में आये हुए रत्न को अयत्न कर अनादर से दूर फैंक दिया। मेरी कुमति भई सो भई, किन्तु तुम्हारी सबकी बुद्धि को उस समय क्या हुआ ? तुम सब तो यहीं उपस्थित थीं। हाय ! मैंने अपना प्यारा रत्न अपने आप खो दिया। यह कह कर ही श्रीमती वक्ष-स्थल पर कराघात कर रोदन करने लगीं।

रामानन्द वसु कहने लगे—वड़ी कठिन समस्या है। महाशय ! इस अवस्था का एक पद मुझे स्मरण हो आया, उसे सुनियेः—

अपनों शिर में आपहि काटो, क्यों कर बैठी मान।
प्यारे नटवर नागर अब तुम, कीयो कहां पयान॥
रैन दिवस कर तप ब्रत पूजा, नहिं पावत हैं जाय।
सोई रतन परो पग मेरे, दियो ताय ठुकराय॥
छाती फटत कहत इन बातन, नहिं सूझत सखि पंथ।
मान निगोडे ने सब मेटो, बिछड़ गये पिय कंथ॥
जीतेजी दुख मिटै न हियसों, तो जीये का काज।
मूल काट पातन सींचै जो, सो निज करे अकाज॥

महाप्रभु गान सुन कर कहने लगे—यह भी एक बड़ी विपद है। जो इतना अत्याचार करे, इतना संताप दे–उस का तनिक प्रतिशोध करना भी बुरा है। जिसको मान ही मान में विदा कर दिया, अब फिर उसको एक क्षण भर भी विना देखे प्राण अधीर हो रहे हैं।

स्वरूप—हाँ, प्रभु! श्याम से मान करने का परिणाम इतना विकट होगा यह श्रीमती पहिले से नहीं जानती थीं। यही श्रीमती इस पद में कहती हैं:—

प्रेम अँधरी व्है नहिं जानों, वहु वल्लभ है कान।
ता संग रार चाव सों ठानी, सो अब जारत प्रान॥
कहा कहूँ सजनी तो सों जो, होत हिये में दाह।
श्याम दोष पै रोष करे सो, है तापिन जग माँह॥
मानहि जान प्रधान सखि! मैं, दीयो ताहि उपेख।
मदन बान सों व्यथित होत मन, अब सखि! वाहि न देख॥
धीरज लाज मान संग छूटी, जीवन में संदेह।
सांची कहत बात हिय की सखि! है इम श्याम सनेह॥

प्रभु ! कृष्ण का दोष देख कर भी उन पर रोष नहीं किया जा सकता, उलटा रोष करना ही दोष है; उसके लिये अपने आप ही को तापित करना पड़ता है । कृष्ण प्रेम की यह एक बात चिर प्रसिद्ध है:—

"शंख काटने की आरी जिम, काटत आंवत जात"

रामराय—इस समय सखियों ने कुछ नहीं समझाया ?

स्वरूप—समझाना तो दूर रहा, उलटा सब दोष श्रीमती ही के शिर मढा। मानों कटे पर और नौन छिड़का। इन्दुरेखा आँख चढा कर मुख टेढा कर कहने लगीं:—

नाहीं करी सुनें मत मुरली, मत वह रूप निहार।
तब तो मोपै आंख बिगार कै, कीयो क्रोध अपार ॥
बार बार विनती कर प्यारी, समझायो मैं तोय।
जो तू वासों प्रीति करेगी, जनम मरेगी रोय ॥
बिन परखे पर रूप देख कै, क्यों सौंपो निज देह।
दिन दिन नाशत रूप माधुरी, जीवन में संदेह ॥
प्रेम वेल वोई तैंने कर, श्याम जलद की आश।
सो अब नैंन नीर सों सींचो, आश भई सब नाश ॥

प्यारी, श्याम की मधुर मुरली सुनने की तो मैंने पहिले ही तुम से नाहीं की थी, उस समय तुमने मेरी एक बात नहीं मानी। उसके पीछे, हृदय को आकर्षण करने वाला उनका रूप देखने का तुम्हारे मन में चाव हुआ, विशाखा ने जब तुमको उनका चित्रपट दिखाया था, उस समय मैंने अपने हाथों से तुम्हारे दोनों नेत्र ढक दीये थे। तुमने मेरे हाथों को हटा कर उन शठशिरोमणि के रूप का दर्शन किया था, मैं उसी समय समझ गई थी कि, इनके लिये तुमको समस्त जीवन रोना पड़ेगा। गुण की परिक्षा विना किये पराये रूप पर मोहित होकर

ही उस को अपने तन मन अर्पण करने का फल इसी प्रकार भोगना पड़ता है। इसी प्रकार एक-एक दिन करके अपना रूप खोया, देह नष्ट किया, जीवन भी अब कितने दिन रह सकता है ? श्याम-जलद से जल प्राप्ति की आशा कर हृदय में प्रेम-तरु रोपण किया था, उस प्रेमतरु को जीवित रखने के लिये अब नयन जल सेचन करो।

इन्दुरेखा की बात समाप्त होते ही श्रीमती कहने लगीं—प्यारे की प्रीति की वे सब बातें अब याद आती हैं, प्यारे नें अपने निज हाथ से माला बनाकर मेरे चरणों में गिरकर, उसे मेरे गले में पहराने का चाव किया था, मैंने अपना माथा हटाकर उस माला को तोड़कर फैंक दीया। सजनि ! क्यों ऐसी मेरी कुमति हो गई ? मेरे कठिन मान को देख प्यारे मुझे छोड़कर चले गये। गिरधर मेरे चरणों में गिरकर चले भी गये, तो भी मैंने उनकी ओर फिर कर नहीं देखा। हाथ में आई हुई लक्ष्मी पैरों से ठुकरा दी। अब मेरे पास रोदन के अतिरिक्त और क्या है ? अब उन दुर्लभ वहुवल्लभ के दर्शन बिना रातदिन प्राण व्याकुल रहते हैं। अब सखि ! उनके मिलने का क्या उपाय है ?

यह कह कर ही श्रीमती अश्रुपूर्ण नेत्रों से रोदन करने लगीं। इस समय सभी स्वरूप के मुख की ओर देखते हुए उनकी बातें सुनने लगे। स्वरूप की बात समाप्त होते ही सब लोग महाप्रभु के मुख की ओर देखने लगे—देखा कि, महाप्रभु बामकर पर कपोल धरकर अश्रु विसर्जन कर रहे थे। उनको वाह्यज्ञान नहीं है। मुख मण्डल विवर्ण और अश्रुशिक्त हो रहा है। इस भाव को देखकर सभी नीरव हो गये। कुछ क्षण के अनन्तर उस नीरवता में से सहसा एक अति कोमल मधुर ध्वनि सब के कर्ण गोचर होने लगी। वह ध्वनि क्रमशः गान के रूप में परिणत हो गई—व्याकुलता-युक्त-रोदन पूर्ण गान क्रमशः परिस्फुट हो उठाः—

पदनख शोभित जिम मणिवृन्द। धरणि सु लोटत गोकुल चन्द ॥
डारि डारि नैन सों नीर। विनती मम व्है करी अधीर ॥
खोटे दिन मम कियो मान, अबहु न निकसत पापी प्रान ॥
क्रोध तिमिर सों भई अजान, तजो रतन माटी सम जान ॥
भाग हीन नारी तन पाय, मरै प्रेमकर यही उपाय ॥

अति सुकोमल कण्ठ द्वारा मृदुल भाव से गाया हुआ गान परिसमाप्त हो गया, किस ने गाया, कहां से गाया, इसका कुछ भी निर्णय नहीं हुआ। गान तो बंद हो गया, किन्तु स्वरों की झंकार अब भी बंद नहीं हुई; भक्तों के सतृष्न नेत्र इधर उधर गायक का अनुसंधान करने लगे किन्तु, कुछ भी संधान न मिला। महाप्रभु की नयनधाराओं का विराम नहीं है, बाह्यज्ञान का भी प्रकाश नहीं है, भक्तगण भी सब विह्वल हैं। फिर वही, उसी स्वर की झंकार सुनाई देने लगी—झंकार कोमल—अति कोमल एवं अति मधुर--किन्तु अस्पष्ट है—मानों किसी दूर देश से धीरे-धीरे चली आरही हो—क्रमशः स्पष्ट-सुस्पष्ट हो उठी-वही व्याकुलता युक्त रोदन पूर्ण गानः—

कोटि मदन-मद नाश होत, नख चन्द्र छटा लख जासु।
सोपदतल लोटो तबहू फिरि, मुख नहिं देखो तासु ॥

फिर सब मौन। कहीं कोई शब्द सुनाई नहीं देता। रामानन्द राय ने मस्तक उठाकर एक वेर छत्त की ओर देखा—जानबूझ कर नहीं—केवल अभ्यास वश होकर, किन्तु कहीं भी कुछ नहीं है। कुछ क्षण के अनन्तर फिर उस कोमल कण्ठ की झंकार सब के कानों में पहुँची:—

"का पूँछत मम बात सखी तू, मोसम नाथ अभागी।
गोकुल चन्दहि तजो मान हित, जा संग प्रीति सुपागी ॥
कातर नैन—"

गान का स्वर आकाश में लीन हो गया, किन्तु उसकी झंकार सब के हृदय के पर्त-पर्त में घूमने लगी। स्वरूप और रामानन्द सभी चकित हो गये, ऐसा मधुर सङ्गीत कभी किसी ने नहीं सुना था। गान मृदु-मधुर और स्पष्ट था। सभी कान लगाकर फिर उस मधुर कंठ-स्वर सुनने की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ क्षण के अनन्तर फिर वही मधुर सङ्गीत—

कातर नैन बैन मीठे कह, सब विध मोय मनायो।
तब तो ताकी एक न मानी, अब तन जात जरायो॥
कहां रहत पिय, कहा करूं मैं, सुमरसुमर व्याकुल मन-

फिर भी एक वेर रोदन ध्वनि की तरह गान सुनाई पड़ा—"सुमर-सुमर व्याकुल मन" इसके संग-संग ही प्रतिध्वनि हुई—"विसरत तोय न पल छिन" अब की वार गान विलकुल ही बंद। भक्त गण तब भी प्रतीक्षा करने लगे। किन्तु सब व्यर्थ। फिर वह मृदु-मधुर तान सुनाई नहीं दी। रामानन्द और स्वरूप दोनों महाप्रभु के मुख को देखने लगे, उनके नयन कमल मुदित हैं, मुदित नयनों से अश्रु-विन्दु ढलक-ढलक कर गण्डस्थल को सिंचन कर रहे हैं।

रामानन्द स्वरूप के कान में धीरे से कहने लगे—श्रीप्रभु इस समय लीला-अनुभव में निमग्न हैं। पूर्ण अन्तर्दशा में हैं, श्रीराधा-भाव में मग्न हैं। परन्तु वड़े आश्चर्य की बात है कि इस प्रकार का अशरीरी गान मनुष्य दैववाणी को सुन सकता है, और यह वाणी स्पष्ट थी। किन्तु इस प्रकार दैवी गान का कार्य्य अत्यन्त विरल होता है।

स्वरूप—विरल होता है, यह ठीक है। किन्तु हम लोगों के लिये यह कोई नई बात नहीं है। छोटे हरिदास ने श्रीमहाप्रभु के विरह में प्रयाग में त्रिवेणी में अपना शरीर जब परित्याग कर दिया, उसके अनन्तर भी कभी-कभी उनके कोमल कंठ का मधुर संगीत श्रवण कर हम लोग विस्मित हुआ करते थे। यह बात आपको भी अच्छी तरह स्मरण होगी।

राय रामानन्द कहने लगे,—"हां हां ठीक बात है। मेरी कैसी भूल है; उसको सुनकर हम लोग कितना आश्चर्य किया करते थे। परन्तु यह बात है बड़ी चमत्कार।

स्वरूप—यह सब बातें मुझे कुछ विशेष विस्मय जनक प्रतीत नहीं होतीं परन्तु अलौकिक अवश्य हैं। आत्मा अनश्वर है—आत्मा में ही भाव रहता है; भाव का विकाश ही भाषा है। जड़ीय कण्ठ के अतिरिक्त दिव्य कण्ठ भी होता है। उसी कण्ठ के द्वारा अनुरागी आत्मा अपना भाव प्रकाश कर सकता है इसमें विस्मय की बात कुछ भी नहीं है, परन्तु अद्भुत अवश्य है। क्योंकि ऐसी घटना सर्वदा नहीं हुआ करती हैं। हरिदास की आत्मा प्रभु के लिये व्याकुल रहा करती है। प्रभु उनका गान श्रवण कर सुखी होते थे, और वे प्रभु को गान गाकर परितृप्त किया करते थे,—यही उनकी सेवा थी। हरिदास की आत्मा ने शरीर परित्याग कर दिया था, क्योंकि प्राकृतिक इन्द्रियों के द्वारा प्रभु का दर्शन करना उनके लिये असम्भव हो गया था। किन्तु उनकी आत्मा के अनुराग के मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट नहीं थी। तनु त्याग करके भी वे प्रभु की परितृप्ति के लिये अशरीरी होकर हम लोगों के आसपास ही घूमते हुए गान किया करते थे। वह गान और भी मधुर मालूम होता था।

रामानन्द—महाशय! तो क्या यह गान हरिदास का है?

स्वरूप—नहीं राय महाशय! ऐसा तो नहीं मालूम होता। क्योंकि हरिदास ने मुझ ही से गान सीखा था। उनका स्वर मुझे अच्छी तरह स्मरण है। उनके स्वर ताल की बात मैं अभीतक नहीं भूला हूँ। क्योंकि वह मेरे ही हाथ की बनाई हुई चीज है। यह जो आपने अभी सुनी थी, इस प्रकार की कोमल मधुर तान नरलोक व देवलोक में होना सम्भव नहीं है—यह सुधा-स्वर- लहरी तो मानों साक्षात् गोलोक से प्रवाहित होकर हमारे कर्णकुहरों में प्रवेश कर रही है। कैसी सुन्दर, कैसी मधुर है एकवार ही अश्रुतपूर्व है। मानव कण्ठसे

से इस प्रकार का गान होना असम्भव है; देव कंठ से भी असम्भव है। कैसा कोमल कमनीय कंठ का करुण मधुर विलाप है,—सुनने से हृदय विदीर्ण होता है, किन्तु सुनने की अभिलाषा और भी अधिक बढती है—यह तो मानों साक्षात् आनन्दमय धाम की अपूर्व संगीत-सुधा है।

रामानन्द—हां, अबकी समझ में आया—यह अचिन्त्य-व्यापार है। मृन्मय जगत् में चिन्मय लीला है। महाभाव स्वरूपिणी श्रीमती की प्रपञ्च में प्रकटित नित्य लीला है—आहा! कैसी अद्भुत है—इस कृपा की कैसी महिमा है! ब्रजरस का अचिन्त्य माधुरी-श्रोत कब किस प्रकार से प्रवाहित होता है यह कौन कह सकता है?

स्वरूप—राय महाशय! यद्यपि मुझे इसमें कोई आश्चर्य ज्ञात नहीं होता, किन्तु इस प्रकार की घटना होना है चिन्ता से बाहर की बात। ऐसा मन में कभी विचार भी नहीं होता कि, इस प्राकृत जगत् में अप्राकृत ध्वनि आकर हमारे इन प्राकृत कर्णों के गोचर होगी।

रामानन्द—पंडित महाशय! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि, यह स्वर लहरी प्राकृत कर्णों के श्रवण का विषय ही नहीं है। श्रीभगवान् कृपा करके जिन को दिव्य कर्ण देते हैं उन्हीं का इस संगीत श्रवण में अधिकार होता है। अन्य पुरुषों की सामर्थ्य से बाहर की बात है। खैर, जो कुछ भी हो, अब भावमग्न प्रभु के भाव को देखिये। श्रीराधाकृष्ण के मिलन-दर्शन के अतिरिक्त प्रभु के आकुल प्राणों की शान्ति की अन्य कोई संभावना नहीं है।

स्वरूप—ऐसा ही तो मालूम होता है। अच्छा, तब तो मिलन ही का एक पद गाता हूँ, श्रीमती कहती हैं:—

है बहु-वल्लभ प्यारो वीर! का विध जानें मेरी पीर॥
चलूं तहां तो है अपमान, विरह अनल जारत इत प्रान॥

क्यों त्यागे सखि! नागर कान। नहिं जान्यों इम जारत 'मान' ॥
सब सखियन में तुहि सुजान। तोय सिखाऊं का मैं ज्ञान ॥
मम दुख सुख तोकूं सब ज्ञात। तासों तन सौंपो सब भांत ॥
कर उपाय कछु तू गुनवंत। जासों श्याम न जायँ अन्त ॥

स्वरूप करुणापूर्ण स्वर से गान समाप्त कर, निर्निमेष नेत्रों से प्रभु के श्रीमुख का दर्शन करने लगे—प्रभु के मुख पर इस समय भी, वही विषादमय भाव वर्तमान है; नेत्रों से अविराम अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है।

रामानन्द कहने लगे—श्रीपाद! अब मुझ से स्थिर नहीं रहा जाता। श्रीप्रभु के मुख मण्डल का निदारुण विरह-यातना का भाव देखकर अब मुझ से धैर्य धारण नहीं होता। प्रभु का सुवर्णकासा वर्ण अत्यन्त मलिन हो गया है। मुख मण्डल कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के चन्द्रमा की तरह क्षीण प्रभ हो गया है।

स्वरूप—विपद् के ऊपर विपद्—प्रथम तो ब्रजरस की महा-भावमय मूर्ति—उस पर फिर कलहान्तरिता की ज्वालापूर्ण करुणा-कातर गोलोक की स्वर लहरी—भाव के ऊपर प्रगाढ भाव—शीघ्र ही इसके विराम की सम्भावना प्रतीत नहीं होती। मैं और क्या कर सकता हूँ, परन्तु उनके चरणों की कृपा है। यह कह कर स्वरूप ने महाप्रभु के समीप बैठकर मृदु मधुर तान से और भी एक गान आरम्भ कर दिया:—

विनय बचन सुन राधा के सखि, चली श्याम के पास।
दूरहि सों लख माधव के मन, बाढो परम हुलास ॥
प्रीत की रीत अपूरब कोउ, जान सकत नहिं ताय।
आपहि स्वयं गयो बहुवल्लभ, दूती के ढिंग धाय ॥
दूती कहत अबहु नहिं जानी, प्रीत रीत तुम श्याम।

वाने रोष कियो तो तुम क्यों, चले गये निजधाम।
जो तुम दोष आपनों जान्यों, क्यों कीयो रस भंग।
तुरत चलो अब तब हित माधव, चलत ! तुम्हारे संग ॥

रामानन्द वसु—श्रीपाद ! इस गान से तो हम लोगों के हृदय में भी आशा का उदय होने लगा। सम्भवतः इस गान से प्रभु के हृदय में मिलन भाव का आवेश आ सकता है।

स्वरूप—हां, अभी और भी दो एक गान गाने की आवश्यकता है। वसु महाशय ! आप तनिक मेरे समीप आजाइये। मुकुन्द ! तुम मृदंग लेलो, देखो ! खूब धीरे-धीरे बजाना।

रामानन्द वसु और मुकुन्द दोनों स्वरूप के समीप आकर बैठ गये, स्वरूप ने फिर मृदुस्वर से गान आरम्भ करदीयाः—

दूती के सुन वचन रसिक वर, आये ता संग भौन।
प्यारीलख मस्तक कर अवनत, बैठी व्है कै मौन ॥
हाथजोड़ अति दीन वचन कह, बिनती करत सु कान।
हों तव चरनन को चिरचेरो, तज प्यारी अव मान ॥
गद्गद् हियो भयो प्यारे कौ, नैनन ढरकत नीर।
देखत ही व्याकुल भइ राधा, सह न सकी पियपीर ॥
नैन नीर भर गह पीतम कर, बोली मीठे बैन।
छिपो जलद शशि उदय भयो पुन, बडभागन यह रैन ॥

गान समाप्त होने पर स्वरूप एवं अन्यान्य भक्तों ने देखा कि, महाप्रभु के निमीलित नेत्र उन्मीलित हो गयेहैं, नेत्र दोनों प्रफुल्ल एवं आनन्द से परिपूर्ण हैं, किन्तु उनमें बाह्यज्ञान के लक्षण इस समय भी दिखाई नहीं देते। एक दृष्टि से सामने की ओर देख रहे हैं—वह दृष्टि आनन्द से प्रफुल्ल एवं चंचल हो रही है—ऐसा मालूम होता है

मानों दर्शनानन्द सुधा में निमग्न है। कुछ क्षण के अनन्तर रुद्धस्वर से प्रभु कहने लगे—"ललिते! मानों मेरे प्राण आगये"।

धिक् धिक् मोय मान कर सजनी, पीतम दिए बिसार।
गये प्रान आये पुन तन में, मनहर रूप निहार॥

कंठ का स्वर और भी परिस्कार होगया—प्रभु गान के स्वरों में गान करने लगे:—

परस श्याम तन पवन सुसीतल, हीयो अतहि सिरात।
मुदित नासिका मधुर गंध सों, श्रवण मधुर सुन बात॥
जाओ सखि! लाओ यमुना जल, कंचन कलश सुपूर।
कर स्नान प्राणपीतम के, होंय अमंगल दूर॥

गान समाप्त होते ही स्वरूप महाप्रभु का भाव देखकर उच्च कंठ से हंसने लगे, उस हंसी का शब्द संक्रामक हो उठा। मुकन्ददत्त ने उस हँसी में हँसी मिलाकर मृदंग की मधुर ध्वनि को दशगुना बढा दिया। गंभीरा मंदिर में सहसा अट्टहास्य की तरंगें उठने लगीं। उस तरंग रव से महाप्रभु का आवेश भंग होगया। कुछ क्षण के लिये प्रभु स्तंभित से हो गये—इस अट्टहास्य का कारण क्या है, यह कुछ भी स्थिर नहीं कर सके, अन्त में विस्मित की तरह कहने लगे—स्वरूप! मैं इस समय मानों एक गंभीर स्वप्न में मग्न था—ऐसा मैंने क्या काम किया जिसके कारण यह हास्यध्वनि हो रही है?

भक्तगण सब मौन होगये, किन्तु उनके मुख मण्डल से एवं नेत्रों से नीरवहास्य की सुधा तरंगें उस समय भी प्रवाहित हो रहीं थी।

स्वरूप आग्रह से पूछने लगे—वह गंभीर स्वप्न क्या था, क्या हम लोग भी सुन सकते हैं?

महाप्रभु—पागल आदमी के स्वप्न की बात एक उपहास का ही विषय है। किन्तु उस में बड़ा आनन्द था। आनन्द का अनन्त, अगाध

सागर था। कैसा मनोहर मधुर मिलन था। प्राणों की आकांक्षा अभी मिटी नहीं है—स्वरूप! तुम, मुकुन्द और रामवसु को साथ लेकर एक मिलन का गान और गाओ, किन्तु मृदुस्वर से गाना।

तब अति कोमल कंठ से स्वरूप ने गान आरंभ किया:—

देखत ही पीतम मुख-इन्दु। प्यारी हिय उमगो सुख-सिंधु॥
मिटो मान रोवत भर नैन। पौंछत पिय कर परत सु चैन॥
मानजनित दुख भयो विनाश। भयो परस्पर अति उल्लास॥
ललिता आदि सखी युग-रूप। देख मगन आनन्द अनूप॥
दोउ परस्पर मिल सुखराश। करत कुंज में केलि विलास॥

स्वरूप आनन्द के मधुर उल्लास से गान समाप्त करना ही चाहते थे कि, मुकुन्द दत्त के मृदंग की ध्वनि श्रवण कर अन्यान्य भक्तगण भी गंभीरा मंदिर में आकर उपस्थित हो गये। स्वरूप, मुकुन्द, राय रामानन्द एवं वसु रामानन्द उन भक्तों को लेकर बाहर गंभीरा मंदिर के प्रांगण में आकर, फिर से मिलन गान करने लगे—श्रीमहाप्रभु ने भी स्वयं इस गान में योगदान दिया। महाप्रभु को मध्य में लेकर भक्तगण कीर्तन और नर्तन में मत्त हो गये। मिलन गान की मधुरध्वनि से गम्भीरा मुखरित हो उठा। श्रीमहाप्रभु के प्रफुल्ल मुख-मण्डल का दर्शन कर भक्तों के आनन्द की सीमा नहीं रही। कुछक्षण कीर्तन करने के अनन्तर गोविन्ददास के इंगित से कीर्तन बंद किया गया। भक्तगण सब प्रभु के चरणों में प्रणाम कर अपने-अपने स्थानों को चले गये। गोविन्द एकान्त पाकर प्रभु की चरण सेवा में प्रवृत्त हुये।

आक्षेपानुराग

गौड़ीय भक्तों में से अनेक भक्त श्रीजगन्नाथदेव की रथयात्रा का दर्शन कर अपने-अपने घरों को चले गये। कुछ भक्त श्रीश्रीगौरांग सुन्दर के सङ्ग का आनन्द उपभोग करने की इच्छा से भाद्रमास पर्यन्त नीलाचल में ही स्थित रहे। आश्विन मास में वे भी महाप्रभु की आज्ञा से स्वदेश को लौट गये। श्रीगौरसुन्दर के हृदय में श्रीकृष्ण विरह की व्याकुलता प्रति दिन प्रबल रूप से बढने लगी। दिन का समय तो भक्तों के सङ्ग किसी प्रकार से व्यतीत हो जाता था, किन्तु रात्रि का समय काटना कठिन हो गया, क्योंकि उस समय व्याकुलता बहुत बढ जाती थी, अन्त में बाह्यज्ञान शून्य होकर तरुण विरहिणी की तरह "हा कृष्ण, हा कृष्ण" कहकर फूट-फूट कर रोदन करते थे।

एक दिन मध्याह्न के समय प्रभु भ्रमण करते—करते समुद्र तट पर जाकर उपस्थित हो गये। समुद्र तट के सुन्दर पुलिन में उप-वेशन कर एकाग्रमन से कुछ शोचने लगे। संग में रामानन्द राय और शिखिमाइति थे। कुछ क्षण के अनन्तर गोविन्ददास और स्वरूप दामोदर भी पहुंच गये। शरत्काल के मध्यान्ह में समुद्र तट स्वभाव से ही सुन्दर होता है। समुद्र अतीत काल का महासाक्षी होनेपर भी मानों चिरनूतन—चिरतरुण प्रतीत होता है।

महाप्रभु स्थिर नयनों से समुद्र दर्शन कर रहे हैं, समुद्र के नील सलिल ने और उसके सौम्य प्रशान्त भाव ने, स्वच्छ पुलिन की नव माधुरी ने और नीलाकाश की उज्वल नीलिमाने-उनके हृदय में क्या भाव उत्पन्न कर दिये, सो कौन जानता है? प्रभु के नयनों को देखने से ज्ञात होता था कि, उनको वाह्यज्ञान विलकुल ही नहीं है। रामानन्द और शिखिमाइति महाप्रभु के इस भाव को देखते देखते ऐसे विह्वल हो गये कि, उनको यह भी ज्ञान नहीं हुआ कि, गोविन्ददास

और स्वरूप दामोदर किस समय आये। महाप्रभु के भावावेश में कहीं विघ्न न हो, यह विचार कर गोविन्द और स्वरूप चुपचाप पीछे ही बैठ गये। कुछ क्षण के अनन्तर न मालूम क्यों रामानन्द ने पीछे फिरकर-देखा तो स्वरूप और गोविन्द बैठे हैं।

स्वरूप ने इंगित से रामानन्द को बोलने के लिये निषेध कर-दिया। सन्मुख निस्तरंग समुद्र की दिगंतव्यापी अनन्त नीलिमा विराजमान है। सभी मौन होकर भाव में मग्न श्रीगौरसुन्दर के मुख कमल को सतृष्ण दृष्टि से देखते हुये प्रतिज्ञा करनें लगे। श्रीगौरांग के नयनयुगल क्रमशः अश्रुपूर्ण हो उठे, अश्रुविन्दु ढलक ढलक कर कपोलों पर गिरने लगे, सायंकाल के सूर्य की रक्त किरणों से प्रभु के मुख कमल की जो शोभा हुइ थी वह वर्णनातीत है। विम्व-विडंवित ओष्ठयुगल काँपने लगे, मानों कुछ कहना चाहते हैं, किन्तु मुख से शब्द नहीं निकलता। कुछ क्षण के अनन्तर अति मधुर अर्धस्फुट शब्द कुछ सुनाई पड़ा—'फसी-तु-म्हा-रे' शब्द संगीत के स्वरों में सुनाई पड़ा। नेत्रों का जल नेत्रों ही में सूख गया—भाव गोपन कर प्रभु मृदु स्वर से गान गाने लगेः—

फँसी तुम्हारे प्रेम फांस में, सुनिये श्याम सुजान।
तुम बिन निश दिन मो मन में अब, भावत और न आन॥
सोवत जागत रूप तुम्हारो, सदा विलोकत नैन।

गान की तान फिर वंद, किन्तु उसकी झंकार भक्तों के हृदय के पर्तपर्त में घूमने लगी। प्रभु के नयन दोनों निमीलित हैं—कंठ नीरव है—मानों महायोगी महाध्यान में स्थित हैं। नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, श्रीअंग झुककर भूमिपर गिरना ही चाहता था कि, रामानन्द ने जल्दी से जाकर पीछे से पकड़ लिया और वहीं बैठ गये। स्वरूप सर्वदा से ही महाप्रभु के द्वितीय स्वरूप के समान हैं। प्रभु के कंठ से ही मानों गान की तान ग्रहण कर गान करने लगे—

सोवत जागत रूप तुम्हारो, सदा विलोकत नैन ।
धरणीपै लिख लिख ताकू मन, पावत है सुख चैन ॥
गुरुजन बीच बैठ मैं जबही, सुनत तुम्हारो नाम ।
व्याकुल व्है मनहीं मन वाकूं, रटत रहू अविराम ॥
होत पुलकतन कंठ सु गदगद, झरत नैन सों नीर ॥

स्वरूप पंडित का गान समाप्त होते ही बसु रामानन्द घबड़ाकर कहने लगे—पंडित महाशय! अब ऐसा उपाय किजिये जिसमें प्रभु को शीघ्र वाह्यज्ञान हो। इस समुद्र तट की वालुका से धूसरित श्रीअंग देखकर वड़ा दुख होता है—हृदय विदीर्ण हुआ जाता है।

गोविन्द कहने लगे—वसु महाशय! इस निदारुण यातना को सहन करने के निमित्त ही मालूम होता है विधाता ने मुझे उत्पन्न किया है।

राय रामानन्द अपने हाथों से अपने अश्रु मार्जन कर रहे थे, और बीच बीच में दीर्घ स्वाश लेते जाते थे। स्वरूप गंभीर भाव से कहने लगे—प्रयत्न करने से प्रभु का यह आवेश भंग किया जा सकता है; किन्तु इनको इसी में आनन्द है। ये इसी आवेश आवेश ही में लीलारस का आस्वादन करते हैं। जब हम प्रयत्न करके इनके भावावेश को भङ्ग करते हैं, तब इनकी यातना अधिकतर बढ जाती है। प्रभु ने ऐसी दशा में अनेक बार कहा है:—

वृथा दुःख दैनै कूं क्यों अब, दीयो मोय जगाय।
कृष्ण रूप देखन नहिं पायो, तुरतहि गयो विलाय ॥

इनके आनन्द ही में हम लोगों का आनन्द है। स्वयं शचीमाता ने भी यही समझ रखा था। नहीं तो, क्या वे इनको सन्न्यास ग्रहण करने की अनुमती देतीं? शीघ्र ही अब प्रभु को वाह्यज्ञान होगा। तबतक हम लोग और भी दो-एक गान करैं क्या कहते हो बसु महाशय!

रामानन्द वसु—अच्छा तो ऐसा ही कीजिये। आक्षेपानुराग का भाव ही, मालूम होता है, इस समय प्रभु के हृदय में प्रबल है।

स्वरूप—जो गान अभी श्रीमुख से गा रहे थे उससे तो ऐसा ही प्रकट होता है। आक्षेपानुराग का ही एक पद और गान करूँ क्या?

रामानन्द वसु—

दिन कू रैन, रैन कू दिन सम, मानों सब विपरीत।
तबहू समझ सकी नहिं प्रीतम! कैसी है तव प्रीत॥
औरन कू अपनौं कियो अरु, अपने किये आन।
घर बाहर, बाहर घर कियो, या विध भई अजान॥

क्या यह पद गाओगे?

स्वरूप—यह भी गाया जा सकता है—किन्तु मैंने और एक गान विचारा था, वह यह है:—

रार करन को चाव श्याम सों, सो दीयो विधि।
कुजन बचन सुन त्याग करूं अब, कैसे गुन-निधि॥

रामानन्द वसु—बहुत सुन्दर है। लोग वाद विवाद से डरते हैं, किन्तु श्रीमती प्रसन्नता पूर्वक श्रीकृष्ण से विवाद चाहती थीं। धन्य है! श्रीराधा प्रेम की महिमा को। हां, इसके अनन्तर क्या हुआ?

स्वरूप—इसके अनन्तर की सब बातें कहने की आवश्यकता नहीं है। दो एक बातें ही कहता हूँ:—

जाके दरशन विना निरन्तर फाटत हीयो।
हिय में पैठो सेल जात का जाय सु कियो॥
हों भोरी अनजान आय औरन की बातन।
कियो श्याम सों नेह मरी मैं रोय सु निशदिन॥

रामानन्द वसु—यही तो बात है महाशय! गोपबालाओं ने

तर्क वितर्क कर श्रीकृष्ण से प्रेम नहीं किया था। दूसरों के मुख से उनके रूप की प्रशंसा सुनकर ही उनसे प्रीति करने लगीं। सरल हृदया व्रजबालाओं के प्रेम की प्रबलता तो देखो, वे दूसरों की बातों में आकर ही उनसे प्रेम करने लगीं और रोते-रोते समस्त जीवन व्यतीत हुआ। तब तो कृष्ण प्रेम एक प्रकार का दुख ही है?

स्वरूप—एक हिसाब से तो है ही। किसी कवि ने भी कहा है:—

सब फूलन पै भ्रमत भ्रमर, नहिं ताको निज पर।
प्रेम श्याम को सुखी, सुनिश्चै है दुख को घर॥

परन्तु इतना दुख पाकर भी वे श्रीकृष्ण प्रेम को नहीं छोड़ सकीं। प्रदीप की अग्नि में पतंग अपने प्राण पर्यन्त देकर भी उसकी ओर सर्वदा धावित होती है।

रामानन्द वसु—आहा! कृष्णानुराग अद्भुत, परम अद्भुत है। हमारे वृद्ध घोष महाशय गाया करते थे:—

सखी मैं छांड़ सकत नहिं श्याम।
कासौं कहूं मरम दुख अपनों, होतजु आठौं जाम॥
कौन करै परतीत काहे सों, भयो विधाता वाम।
धीरज धरम कान कुल की तज, सब विध भई निकाम॥

स्वरूप -श्रीकृष्णानुराग की यही तो बात है। मैं काशी में जब वेदान्त पढा करता था, उस समय मेरे सहपाठी सन्न्यासी मेरी श्रीकृष्ण—उपासना की कितनी ही हँसी किया करते थे, मैं उनसे यही कहा करता था:—

बुरी कहै तो कहै सभी जग, मैं नहिं छांडूं श्याम।
रूप माधुरी बसी हिये में, कढत न आठौं जाम॥

रूप माधुरी ऐसी दृढ़ व्है, पैठी हिय में आय।
सोच यही अब मेरे हिय कूँ, काढ न कहिं लैजाय॥

रामानन्द वसु—महाशय! तब तो आपको भी "कृष्ण कलंक" का कष्ट भोगना पड़ा था?

स्वरूप—वैसा मेरा अधिकार कहां है? क्या वैसा मेरे भाग्य में होना सम्भव है? "कृष्ण कलंक" ब्रजरस का परम धन है—अनुराग का अपार समुद्र है। श्याम प्रेम की कोई सीमा नहीं है। श्रीमती राधिका कहतीं हैं:—

पीतम के हित बनी जोगिनी, तबहु न पायो चैन।
छिन छिन पल पल जुग सम बीतत, निशदिन बरषत नैन॥

रामानन्द वसु—श्रीप्रभु अब भी अनुभवानन्द में मग्न हैं, श्रीमुख-कमल मानों आनन्दरस से पूर्ण है—आप इस समय एक गान और गाइये।

श्रीस्वरूप दामोदर वसु महाशय के कहने से भावावेश में मग्न होकर अति मधुर स्वर से गान करने लगेः—

सुख के हित यह भवन बनायो, तामें लागी आग।
सुधासिन्धु को सलिल सखि मोय, मारत विष सम लाग॥

स्वरूप के गान का अन्तिम पद समाप्त होने भी नहीं पाया कि, प्रभु रोदन के स्वर में "हा कृष्ण! हा कृष्ण! हा प्राण बंधु" उच्चारण कर जाग उठे। जिस समय स्वरूप पण्डित ने गान आरम्भ किया था उस समय प्रभु अर्द्धवाह्य दशा में थे। गान आरम्भ होते ही उनमें चेतना का संचार होने लगा। राय रामानन्द के कंठ में दोनों भुजा डाल अति व्याकुल होकर कहने लगे—प्रिय रामराय! मैंने मन में यह बिचार किया था कि, कृष्ण प्रेम के सुख सागर में निमग्न हो प्रेमामृत पान कर, अपने तापित प्राणों को शीतल करूंगा, परन्तु मेरे

दुर्भाग्य से मुझे अमृत के बदले गरल प्राप्त हुआ। स्वरूप ने ठीक ही कहा है-प्यारे ने अपना दर्शन दिया, वंशी बजाकर उदासी बनाकर घर से बाहर निकाला, परन्तु अब वे ढूंढने से भी नहीं मिलते—कभी तो मन में आता है कि, वनवन में भ्रमण करूं और कभी मन में आता है कि, समुद्र तट पर पड़ा रहूँ, कहीं तो उनके दर्शन होंगे। किन्तु कहां हैं, वे मुरली मनोहर—मुझे बीच धार में डालकर कहां चले गये ? अब रात दिन प्राण जलते हैं।

स्वरूप ने फिर गान आरम्भ किया:—

सखी का लिखो यही मम भाग।
शीतल किरन चन्द को तन कूं, जारत हैं बन आग ॥
ज्योंहीं चली जान थल जल कूं, लगो कीच को दाग।
चाहत धन वाढो दरिद्र अति, मानिक दीयो त्याग ॥
देत विथा मोय जलद बूंद हू, तन ओरा सम लाग।
मरवेहूतें अधिक होत दुख, किये श्याम अनुराग ॥

उस समय शारदीय संध्या के सुनील वर्ण आकाश में चन्द्रोदय हो चुका था। चन्द्रमा की सुशीतल ज्योत्स्ना सागर के नील जल पर एवं स्वेत वालुका पर प्रसारित हो सुधा-माधुरी विस्तार कर अपूर्व शोभा संचार कर रही है। इस सरल-शुभ्र-सौन्दर्य का भी महासौन्दर्य बर्धन कर रहे हैं—प्रिय पार्षदों के सहित श्रीराधा प्रेम की प्रकट मूर्ति-श्री श्रीकृष्ण चैतन्यचन्द्र। स्वरूप के गान से व्याकुल होकर प्रभु कहने लगे—स्वरूप ! तुम्हारे गान की तान मेरे प्राणों को प्रवलता से आकर्षण कर रही है, मैं उसमें अब किसी प्रकार की बाधा नहीं डालूंगा। तुम्हारी संगीत-सुधा ही मेरे तापित प्राणों की चरम औषधि है। हां स्वरूप ! इसके अनन्तर ?

स्वरूप के कंठ से पुनः सुधा का श्रोत बहने लगा:—

विष कौ घड़ा खीर मुख भरकै, कानैं दीयो लाय ?
भलो बुरो तब नाय विचारो, मरत खाय अब ताय ॥
लोभी मीन मगन ही जल में, मरी जाल में जाय ।
मृगी मरी सुन तान सुरीली, व्याध वाण तन लाय ॥
चातक चोंच पसार स्वांत हित, रही हिये अकुलाय ।
चली पवन घन उड़े ताहि छिन, कुलिश मिले तब ताय ॥

महाप्रभु की व्याकुलता और भी अधिक बढ़ती हुई देख, स्वरूप सहसा नीरव हो गये। राय रामानन्द ने कहा—बस, अब और आगे गान गाने की आवश्यकता नहीं है। प्रभु ने हाथ के इंगित से स्वरूप को आगे और भी गाने के लिये आदेश किया। स्वरूप फिर गान गाने लगे:—

अवला वाला कूं मिलाय विष, लड्डू दिये खवाय ।
स्वाद स्वाद में खाय सुभोरी, दीये प्राण नशाय ॥

महाप्रभु रोकर कहने लगे—हाय, सरलाब्रजवाला गण ! उस निठुर के हाथ में पडकर तुम्हारी यह दशा हुई ! श्याम का प्रेम केवल अमृत नहीं है—अमृत मिश्रित विष है—यह तुम पहिले नहीं जानतीं थीं। और जानने से भी क्या होता, इस लोभ को क्या कभी कोई सम्वरण कर सकता है ?

जैसे दीप दिखाय रूपकू, देत पतंग जराय ।
तैसे श्याम दिखाय गुणन निज, दुख में देत डुवाय ॥

महाप्रभु यह कहकर "गोपी" "गोपी" पुकार कर रोने लगे। रामानन्द राय वड़े यत्न से प्रभु के नेत्र जल को पोंछकर कहने लगे—दयामय ! अब शान्त हो जाइये, आपकी व्याकुलता को देखकर हम लोग किसी प्रकार से धैर्य धारण नहीं कर सकते। यह देखिये, व्रज

महाराय आपके इस भाव को देख देखकर अविरल अश्रु बहा रहे हैं। आपके प्रिय सेवक गोविन्ददास उन्मत्त की तरह भूमि पर पड़े हैं।

इससे आगे राय रामानन्द को और कोई शब्द ऐसे नहीं मिले जिनसे प्रभु को शान्त कर सकें। अतएव वे मौन होकर स्तम्भित हो गये। स्वरूप ने निवेदन किया—प्रभो! अब पधारिये, श्रीमन्दिर में चलकर श्री श्रीनीलाचलचन्द्र जगन्नाथदेव की आरती के दर्शन करें।

प्रभु गद्गद् स्वर से कहने लगे मैं तो सर्वदा यही चाहता हूँ कि मन के उत्ताप को मन ही में दबाकर शमन करूँ। उसे सब के सामने प्रकाशित कर किसी को कष्ट न दूं; किन्तु मैं क्या करूं, किसी प्रकार भी धैर्य धारण नहीं कर सकता। स्वरूप तुम को एक गान और भी सुनाना पड़ेगा। मैं धैर्य पूर्वक उसे श्रवण करूंगा। इसके अनन्तर ही तुम लोगों के सङ्ग श्रीमन्दिर को चलूंगा।

स्वरूप कुछ व्यग्र होकर विनय पूर्वक पूछने लगे "कौन सा गान प्रभो?"

महाप्रभु किंचित् विचार कर कहने लगे—वही गान, जो उस दिन गंभीरा में गाया था "पावस की नव मीन मरन नहिं तनकहु जानत" क्या स्मरण है? तुम्हारे भाव व्याकुल कंठ की करुण-कोमल तान से उस दिन का गान अत्यन्त मर्मस्पर्शी हुआ था, उसकी झंकार मानों अब तक मन में बसी हुई है। वृज-विरहिणी ही मानों कवि के कंठ में प्रवेशकर इस नश्वर जगत् में विरह व्यथा प्रकाशित कर गई हैं। आहा! कैसा मनोहर पद है।

स्वरूप ने नम्रता पूर्वक निवेदन किया—प्रभो! सब गानों का भाव सभीदिन प्रस्फुटित नहीं होता—भाव की तरंगें जब तक बाहर से भीतर हृदय में नहीं पहुँचती हैं, तब तक किसी गान से भी रस की स्फूर्ति नहीं होती। आपने जो आज्ञा की वह पद स्मरण है। यह कहकर स्वरूप ने गान की तान इस प्रकार आरम्भ की:—

कहा भयो यह सखी, श्याम सौं सरस प्रीतिकर।
निशि दिन धड़कत प्राण, सुलोचन झरत हैं झरझर ॥
सोये हू नहिं चैन, नींद नश गई दृगन सौं।
श्याम श्याम रट लगी, तनक हू टरत न मन सौं ॥
पावस की नव मीन, मरन नहि तनकहु जानत।
करकै नव अनुराग, प्रान धीरज नहिं मानत ॥
जो यह रस नहिं चखत, सुखी है सोई जिय में।
स्याम प्रेम चुभ गयो, सेलसम मेरे हिय में ॥
निठुर स्याम को प्रेम, सबै विधि है दुख को घर।
सुनतहि ताको नाम, सखीरी लगत मोय डर ॥

गान समाप्त होते ही महाप्रभु राय रामानन्द का कर ग्रहण कर कहने लगे—रामराय! उस दिन गंभीरा में जो यह पद सुना था उसकी अपेक्षा आज यहां इस में भाव अधिकतर प्रस्फुटित हुआ है। मेरे कानों में केवल वही एक झंकार बसी हुई है "पावस की नव मीन मरन नहिं तनकहु जानत"—रामराय! तुमने कभी देखा है या नहीं, सो तो मुझे ज्ञात नहीं है, परन्तु वह एक बड़ा विचित्र दृश्य है। ग्रामों की छोटी-छोटी पोखरों में कुछ मछलियां होती हैं। जिस समय ग्रीष्म काल की प्रचण्ड धूप से उन पोखरों का जल सूखने लगता है उस समय उन मछलीयों को बड़ा दारुण दुख प्राप्त होता है। किसी कवि ने कहा भी है—"आकुल जल बिन मीन परान" वास्तव में यही बात है। जब निदारुण निदाघ के भीषण दाह के अनन्तर पावस ऋतु में प्रबल पलल धारा प्रवाह के आकार में ऊपर से उस पोखर में पड़ती है तब कोई कोई मछली उस जल धारा के सहारे से चढ़कर ऊपर भूमि पर आजाती हैं। उस वृष्टिजल के प्रवाह को देखकर कदाचित् वे यह-

विचार करती हैं कि, उनके सन्मुख यह जल का अनन्त प्रवाह प्रवाहित हो रहा है। इससे हमारी पोखर की यातना समूल नाश हो जायगी यह विचार कर जब वे प्रवाह के सहारे ऊपर सम भूमि पर आती हैं तब वे मत्स्यभक्षी पक्षीयों के पंजों में पड़कर प्राणों का परित्याग करती हैं। हाय, हाय, कृष्ण प्रेम में पड़कर व्रजबालाओं की भी यही दशा हुई थी।

यह कहते-कहते महाप्रभु के नेत्र युगल अश्रुजल से परिपूर्ण हो गये। वे सहसा उठ खड़े हुए और पार्षद गण के सहित श्री श्रीजगन्नाथदेव की आरती दर्शन करने को चलदीये।

व्रजबालाओं की कृष्णोपासना

हेमन्त ऋतु का समय है। गंभीरा मन्दिर सम्पूर्ण रूप से नीरव है। कहीं कोई शब्द सुनाई नहीं देता। भक्तों का निरन्तर आना जाना बदं हो गया है। सभी को यह मालूम हो गया है कि, महाप्रभु अब निर्जन स्थान में ही रहना चाहते हैं। दो चार अन्तरंग भक्तों के अतिरिक्त अब वे अन्य किसी से कोई वार्तालाप नहीं करते; रात दिन केवल व्रजलीला का ध्यान और व्रजरस का आस्वदन करते हैं। व्रज-भाव-निमग्न महाप्रभु का श्रीअंग प्रतिभाव में अपूर्व शोभा धारण करने लगा। पुण्य-पवित्रता एवं प्रेम भक्ति की प्रतिच्छवि के समान अन्तरंग भक्त वृन्द अब उनकी श्रीमूर्ति का दर्शन करना ही समस्त साधनों का सार ज्ञान करते हैं। गंभीरा मन्दिर के दर्शन से ज्ञात होता है, मानों इस जड जगत् में अनन्त लावण्यमय गोलोक माधुरी प्रस्फुटित हो रही है—इस नरलोक में इस प्रकार आनन्द-वृन्दावन-माधुरी का प्रकाश अति असम्भव है—स्वप्न के भी अगोचर है। बद्रिकाश्रम,

हरिद्वार, काशी, कांची, अयोध्या, अवन्तिका, यहां तक कि, प्रेममय श्रीकृष्ण की व्रजलीला-रंगस्थली श्रीवृन्दावन के अधिवासी भक्तगण भी गंभीरा मन्दिर की इस नवशोभा का संदर्शन कर मोहित होजाते हैं- उन लोगों को ऐसा ज्ञात होता है मानों इससे पूर्व इस प्रकार का प्रेम प्राणमय जाग्रत महातीर्थ कभी किसी ने कहीं नहीं देखा है। महाप्रभु की श्रीमूर्ति दर्शन करने से किसी को यह ज्ञात नहीं होता है कि, ये सामान्य रक्तमांसमय मनुष्य देह है- ऐसा ज्ञात होता है कि, साक्षात् घनीभूत प्रेमानन्द रसविग्रह गंभीरा मन्दिर में, जीवों के नयन गोचर हो रहा है। आहा, कैसी सौम्य, शान्त, सुन्दर समुज्वल श्रीमूर्ति है ?

कार्तिक मास के अन्त में एक दिन संध्या के समय प्रदीप प्रज्वलित होने के अनन्तर स्वरूप और रामानन्द ने गंभीरा मन्दिर में प्रवेश कर उस प्रेम मूर्ति के श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम किया। महाप्रभु प्रेम से हर्षित हो दोनों को प्रगाढ आलिंगन कर व्यग्र भाव से कहने लगे- मैं अभी तुम लोगों के आने की प्रतीक्षा कर ही रहा था। अन्धा जिस प्रकार सहसा नेत्र पाकर आनन्दित होता है- तुम लोगों को देख कर मुझे भी उसी प्रकार आनन्द होता है, वास्तव में तुम्हीं मेरे अन्धे के नेत्र हो।

स्वरूप हँसकर कहने लगे- जो नेत्रों को सर्वदा निमीलन रखना ही सुखकर समझते हैं- वे नेत्रों का समादर करेंगे, यह बात कैसे ज्ञात हो ?

रामानन्द स्वरूप की हां में हां मिलाकर कहने लगे- प्रभु अब अधिक समय भावावेश में ही निमग्न रहते हैं- हम लोगों के समीप रहने से उनके अनुभव और आस्वादन में विघ्न होगा; यह जानकर प्राणों के आवेग से श्रीचरण दर्शन करने के लिये यहां आकर भी आड़ में खड़े रहते हैं।

महाप्रभु ईषत् हास्य कर कहने लगे- यह तुम लोगों का अन्याय है- मुझको यदि तुम लोग अपना निज जन समझते तो तुम

लोगों को इस प्रकार के विचार का अवकाश नहीं मिलता। मैं एक सन्यासी हूँ, मेरा संसार में कोई नहीं है- तुम लोग भी यदि मुझे इस प्रकार परजन ज्ञात करोगे तो और मेरी खबर कौन लेगा ? मैं किसी दशा में भी क्यों न रहूँ, परन्तु तुम लोगों की कृपा से वंचित कभी न रहूँ, बस यही एक मात्र वासना है।

माधुर्य्यमय भगवान् ने ऐसे मधुर भाव से यह बचन कहे, जिन्हें श्रवण कर श्री पाद स्वरूप दामोदर और राय रामानन्द दोनों का हृदय द्रवीभूत होगया। रामराय कहने लगे- दयामय ! इस दीन पर आपकी इतनी कृपा !

महाप्रभु रामराय की बात को रोक कर कहने लगे- रामराय ! निजजन के मुख से शिष्टाचार की बातें सुनकर कभी कोई सन्तुष्ट नहीं होता। अब ये बातें रहने दो। आज प्रातःकाल से ही ऐसी इच्छा हो रही है कि, तुम लोगों के मुखसे कुछ श्रीकृष्णकथा श्रवण करूं। जबसे ये सुखमय हेमन्त ऋतु आई है तबसे रास की बात बारम्बार स्मरण होती है।

प्रभु के मुखसे " हेमन्त " शब्द सुनते ही स्वरूप ने श्रीमद्भागवत का यह श्लोक पढ़ाः—

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रज कुमारिकाः।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥

श्लोक सुनते ही महाप्रभु सतृष्ण नेत्रों से स्वरूप के मुख की ओर कोमल दृष्टि निक्षेप कर आग्रह पूर्वक कहने लगे-हां, स्वरूप इससे आगे क्या है ?

स्वरूप ने कहा—इससे आगे जो कहने की बात है,वही है—

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरी।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥

महाप्रभु हाथ उठाकर कहने लगे—अच्छा, तनिक ठहरो—

पहिले बात को समझने दो। हेमन्त ऋतु का प्रथम मास है—नन्द-व्रज की गोपकुमारिकाओं ने हविष्य-भोजन कर कात्यायनी देवी का पूजन किया था। रामराय! व्रजबालिकाओं का साधन तो देखो—हेमन्त ऋतु में व्रजधाम में अत्यन्त शीत होता है। कुमारियाँ सब शीत के कष्ट को सहन कर सूर्योदय से पूर्व ही कालिन्दी के शीतल जल में स्नान कर और केवल हविष्य भोजन कर कात्यायनी का अर्चन करती थीं। कुमारिकाओं ने इस प्रकार कठोर व्रत किया था—क्यों किया था—यह बात उनकी प्रार्थना से ही प्रकाशित है। उनकी प्रार्थना यह है; "महामाये! महाशक्ति! कात्यायनि! व्रजेन्द्र-नन्दन के सङ्ग हमारा संयोग होगा, यह बात हम मन में भी विचार नहीं कर सकतीं, क्योंकि ऐसा होना सम्पूर्ण असम्भव है—परन्तु माता तुम महायोगिनी हो—तुम अघटन-घटना-पटीयसी हो—तुम असम्भव को सम्भव करने में परम प्रवीण हो—तुमसे हमारी अब यही प्रार्थना है कि, ऐसी कृपा करो जिसमें हम व्रजेन्द्र सुत को पति-रूप से प्राप्त कर सकें। तुम समस्त शक्ति समूह में सर्वोपरि हो। हे देवि! कृपाकारो, हमारी मनोवाञ्छा पूर्ण करो।

श्रीकृष्ण-अनुरक्ता कुसुम-कोमला व्रजकुमारिका--गण एक मास पर्यन्त कठोर व्रत धारण कर श्रीकृष्ण प्राप्ति के निमित्त इस प्रकार प्रार्थना किया करती थीं।

महाप्रभु—अच्छा, इससे आगे क्या हुआ स्वरूप ?

स्वरूप – ये सब प्रातःकाल में उठकर परस्पर हाथ पकड़ कर कृष्णनाम गान करती करती यमुना स्नान को गमन किया करतीं थीं। एक दिन एक बड़ी विपरीत घटना हुई। उस घटना के होने से गोपबालिका बड़ी विपद में पड़ गईं। स्वरूप पण्डित की बात समाप्त होने भी नहीं पाई कि बीचही में रसिकवर रामराय मुख पर हाथ रख कर मन्दमन्द हास्य कर कहने लगे "क्या चीरहरण? कैसी लज्जा की बात है" यह कहते ही रामराय के कपोल युगल उज्वल हो

उठे, मुख का मधुर हास्य उनमें सम्मिलित हो गया—परन्तु नयनों का हास्य नहीं छिप सका। महाप्रभु परम धीर गम्भीर हैं; प्रथम तो वे कुछ बोले ही नहीं। चित्त उनका निर्विकार एवं प्रशान्त है। स्वरूप ने पूछा, क्या उस विपरीत घटना का वर्णन करना होगा ?

महाप्रभु ने गम्भीर भाव से कहा—क्यों, उसे क्यों नहीं कहोगे ?

स्वरूप कहने लगे—ब्रजबालिका जिस प्रकार प्रतिदिन यमुना के किनारे पर वस्त्रों को रख कर स्नान किया करती थीं, उसदिन भी उन्होंने उसी प्रकार वस्त्र रख कर कालिन्दी के निर्म्मल जल में अवगाहन किया। कृष्णनाम की रटना वे उस समय भी कर रहीं थीं।

महाप्रभु स्वरूप की बात में बाधा देकर कहने लगे—स्वरूप! कुमारियों के अनुराग को तो देखो! कुमारियों के हृदय में जो अनुराग है उसका एक कण भी मुझे मिलजाता तो मैं कृतार्थ हो जाता। शयन में स्वपन में केवल वही कृष्ण भावना, स्नान में, भोजन में सर्वदा कृष्ण नाम रटना। ऐसा अनुराग हुये बिना क्या कृष्ण किसी को प्राप्त होते हैं? अच्छा कहो. इससे आगे क्या हुआ ?

स्वरूप—इसके अनन्तर ब्रजवालिकाओं ने तट की ओर जो देखा तो वहाँ वस्त्र नहीं हैं। शोचने लगीं, इतने वस्त्र कहाँ गये, वायु भी तो नहीं चल रही है जो उड़ जाते ? इस घाट पर कभी किसी ने कोई चोर भी नहीं देखा, तब फिर कौन लेगया ? सन्मुख एक कदम्ब का वृक्ष है। देखा तो चित्र विचित्र वर्ण के सब वस्त्र उसपर पताकाओं की तरह फहरा रहे हैं; और उनके घरका माखनचोर-उनका वही चितचोर वृक्ष की एक शाखा पर विराजमान होकर परिहास की हँसी से हँस रहा है। बस, फिर जानने में विलम्ब नहीं हुआ, वस्त्र चुराना इन्हीं की लीला है। ब्रजवालिका यह देखकर मनमें बहुत घबड़ाईं। घबड़ाने की बात भी है। हाथ जोड़ कर वस्त्र मांगने लगीं-परन्तु वहां सुनता कौन है! चीर चोर कुछ सीधे बालक नहीं हैं। रसिक शेखर

वृक्ष शाखा पर विराज कर आज्ञा करने लगे, यदि तुम वस्त्र चाहती हो तो, यहां मेरे निकट आओ तुम सब ब्रह्मचारिणी हो, तुमसे मैं कभी मिथ्या नहीं बोलूंगा। वस्त्र लेने हों तो, यहां आओ, मैं तुम्हें अवश्य वस्त्र प्रदान करूंगा। वस्त्र रहते क्यों वृथा इस दारुण शीत में कष्ट पा रही हो ?

यह कह कर रसराज नन्दकुमार नीरव हो गये, मानों बड़े भले मानष हैं-परम साधु हैं !

रामराय-केवल परम साधु ही नहीं-परम साधुओं के भी शिरोमणि हैं ! ऐसा न होने से क्या कोई इतने प्रभात में वस्त्र चोरी कर सकता है ? हां, महाशय ! इससे आगे क्या हुआ, मैं अधिक कुछ नहीं कहूँगा-कहीं प्रभु मनमें कुछ और समझें ?

महाप्रभु ने गंभीर भाव से कहा हाँ स्वरूप ! इस आज्ञा को सुनकर ब्रजबालिकाओं ने क्या किया ?

स्वरूप-अच्छा सुनिये-वे ब्रजबालिका सब कुमारी होकर भी रसमयी थीं। वसन चोर के बचन सुनकर उनके हृदय में प्रेम का सागर उमग उठा, लज्जित भाव से एक दूसरी के मुख की ओर देख कर हँसने लगीं, किन्तु कालिन्दी के शीतल जल में उनका आकंठ मग्न शरीर शीत से थर थर कांपने लगा। वे विनीत भाव सें कहने लगीं-श्यामसुन्दर ! यदि तुम हमारे वस्त्रों को प्रदान कर दोगे, तवतो हम तुम्हारी दासी बन कर तुम्हारी आज्ञा पालन करेंगी—और यदि प्रदान नहीं करोगे तो, हम तुम्हारे इस अपराध की बात कंस महाराज तक पहुँचा दैंगीं।

रामराय—राजा का भय ! सरला गोपबालिकाओं की भय दिखाने की बात सुन कर भी हँसी आती है। जिसका इतना दुःसाहस है वह क्या कभी किसी का भय कर सकता है ? इसका वसन चोरने क्या उत्तर दिया ?

स्वरूप--इसका उत्तर अति स्पष्ट था--यदि तुम मेरी दासी

बनना चाहती हो, तबतो मेरी आज्ञा का पालन करो और यहाँ आकर वस्त्र ग्रहण करो—नहीं तो वस्त्र नहीं मिलेंगे--और जो राजा का भय दिखाती हो, सो राजा मेरा क्या कर सकता है ?

महाप्रभु-एकबार ही निरुपाय, स्वरूप ! ज्ञात होता है इसी प्रकार से वहिरङ्ग को अन्तरंग बना लेना पड़ता है ? ज्ञात होता है श्रीभगवान् से विन्दुमात्र सङ्कोच रहने से भी वे किसी को नहीं अपनाते हैं। अच्छा, इससे आगे ?

स्वरूप--इसके अनन्तर ब्रजकुमारिका निरुपाय होकर शीत से काँपती काँपती जलसे बाहर आँईं। और कर द्वारा किसी प्रकार से लज्जा निवारण कर सङ्कुचित भाव से श्रीकृष्ण के समीप गईं। नारीजाति के लिये लज्जा त्याग करना प्राण त्याग से भी अधिक कठिन है। क्या करैं, कोई उपाय नहीं था।

महाप्रभु—हाँ समझ गये--इससे आगे ?

स्वरूप--इससे आगे, धर्मज्ञ-शिरोमणि गम्भीर भाव से कहने लगे "तुम सब ब्रह्मचारिणी तो हो, परन्तु तुमको धर्मशास्त्र का कुछ भी ज्ञान नहीं है। तुमने व्रत ग्रहण करके नग्न होकर जो जल में अवगाहन किया है इससे देवता का अपराध हुआ है, इस अपराध को क्षमा कराने के निमित्त अपने अपने मस्तकों पर अञ्जली बाँधकर प्रणाम करो--तब तुमको वस्त्र मिलेंगे"

रामानन्द--यह तो असाधारण विड़म्बना है--बहुत बड़ी विपत्ति है।

स्वरूप--यह विपत्ति नहीं है, यह है आ-पत्ति, अर्थात् श्रीकृष्ण-प्राप्ति। राय महाशय ! "लज्जा, भय और मान; इनसौं मिले न कान (कृष्ण)"।

रामानन्द--कैसी कठिन परीक्षा है। इतनी परीक्षा लेकर श्रीकृष्ण जीव के हृदय को शुद्ध करते हैं ? ब्रजवालिकाओं ने उनकी आज्ञा को अच्छी तरह पालन तो किया होगा ?

स्वरूप—आज्ञा पालन करने के अतिरिक्त और उपाय भी क्या था ? श्रीकृष्ण के चरणों में मान, लज्जा, भय आदि नारीधर्म को सम्पूर्ण रूप से समर्पण कर; दोनों हाथों से मस्तक पर अञ्जली बाँध कर प्रणाम करने लगीं। उस समय उनके मुख मण्डल पर लज्जा या भय का चिन्ह लेशमात्र भी नहीं था, सबके सरल प्राण थे। व्रत भङ्ग होने से कहीं श्रीकृष्ण प्राप्ति में कोई विघ्न पड़े, इस भय से उन्होंने निःसङ्कोच होकर श्रीकृष्ण के आदेश का अक्षरशः पालन किया—तब श्रीकृष्ण ने भी उनके सब वस्त्र देदिये।

महाप्रभु—श्रीगोपीजनवल्लभ की लीलाओं का रहस्य एकमात्र उनके एकान्त भक्तों के अनुभव का ही बिषय है। यह सब व्यापार वेदगुह्य व्यापार है। धर्म का तत्व अत्यन्त सूक्ष्म है। अधिकारी भेद से ही धर्म का भेद होता है। इस अप्राकृत धर्म में विशुद्ध-आनन्द-रस-रचित-तनु ब्रजबालिकाओं का ही अधिकार है। अन्यत्र इस उपासना का सौभाग्य सर्वथा असम्भव है।

रामानन्द—रसिकशेखर श्रीकृष्ण ने ब्रजबालिकाओं से इस प्रकार बञ्चना कि, किन्तु वे इसे कुछ भी न समझ सकीं। ब्रजबालिकाओं के समान अमल और सरल हृदय अन्य किसी का तो दिखाई देता नहीं है।

स्वरूप—यह तो ठीक ही है। परन्तु रसराज श्रीकृष्ण ने वस्त्र देते समय यह बात उनसे स्वयं ही कही थी। उनकी लज्जा हरण करके पुनः उन्हें और भी अधिक लज्जित करने के निमित्त वे कहने लगे—"कहो ! तुम्हें धर्मका उपदेश देकर कैसा ठगा। बस इतनी ही तुममें बिद्या बुद्धि है ?"

रामानन्द—क्या ब्रजबालाओं ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया ?

स्वरूप—कुछ भी नहीं, उन्होंने तनिक हँसकर मुख फेर लिया। श्रीकृष्ण से अपमानित होकर भी उनके हृदय में पूर्ण आनन्द था।

किन्तु उस समय उनके नेत्रों में कुछ लज्जा के लक्षण दिखलाई देते थे, जिससे उनकी मुख कान्ति और भी मधुर ज्ञात होती थी।

रामानन्द-सो तो होता ही। उन्हें यह अच्छी तरह ज्ञात हो गया था, कि जिसके लिये वे इतना कठोर व्रत आचरण कर रही हैं, उस व्रत में फलफलने में अब अधिक विलम्ब नहीं है।

स्वरूप-यह ज्ञात होने पर भी वे वहीं खड़ी रहीं- उनके मन का भाव यह था कि, कृष्ण के श्रीमुख से बिना कोई स्पष्ट उत्तर सुने, घरों को नहीं लौटेंगी। कदाचित् उनका कहना यह था- चतुर चूड़ामणि! रसिक राज! हमने जो कुछ कार्य किया है उससे आपके चरणों में हमारा अपराध हुआ है या आपका प्रीति साधन हुआ है, यह हमको अभी तक ज्ञात नहीं है। अब आप यह बताओ कि अब हमारी मनोवांछा पूर्ण होगी या नहीं? इसका एक निश्चत उत्तर सुनकर ही हम घरों को जाँय।

रामानन्द-व्रजवालिकाओं के संकल्प को सुनकर सत्य संकल्प श्रीभगवान् ने क्या उत्तर दिया?

स्वरूप-श्रीभगवान् ने कहा "तुम्हारा संकल्प अवश्य ही सत्य होगा, तुम मुझे शीघ्र ही पतिरूप से प्राप्त करोगी।"

महाप्रभु-यहाँ पर श्रीभगवान् की दो बातें बिना कहे तुम्हारा यह पवित्र प्रसंग असम्पूर्ण ही रह जायगा। उनमें से एक बात यह है कि, श्रीभगवान् ने गोपवालिकाओं से कहा था जिनकी बुद्धि केवल मेरे चरणों ही में आविष्ट है, उनको अन्य कोई कामना नहीं रहती- उनका काम साधारण काम नहीं है, और उस काम से काम जनित कर्म बन्धन भी नहीं होता। क्योंकि कुटे हुये धान कभी अंकुरित नहीं होते। इस पर भी यदि वे धान भून लिये जाँय तो फिर उनके उत्पन्न होने की कोई भी संभावना नहीं रहती। व्रजवालाओं का अन्य कामनाओं से रहित, परिमार्जित भावविशेष, संस्कृत भगवत प्रेम, सेवारूपकाम किसी प्रकार से भी कर्म बन्धन का हेतु नहीं है। यद्यपि व्रजवालिकाओं

ने श्यामसुन्दर के श्रीमुख से इस प्रकार के उपदेश प्राप्ति की प्रतीक्षा नहीं की थी, तथापि परम कारुणिक श्रीभगवान् ने इस स्थान पर इस उपदेश को प्रकाश कर उत्तम कार्य ही किया था। वे जिस उत्तर प्राप्ति की प्रतीक्षा कर रहीं थीं, प्रेममय ने उन्हें वह उत्तर भी स्पष्ट इस प्रकार से दे दिया था—"हे सती कुमारी गण, तुम्हारी कात्यायनी व्रत साधना अब पूर्ण सिद्ध हो गई; अब तुम अपने अपने घरों को जाओ, आगामी शरद ऋतु की रजनी समूह में तुम मेरा संग लाभ कर सकोगी।"

रामानन्द—वास्तव में रसिक शेखर, परमकरुण, आनन्द-लीला-रसमय-विग्रह श्रीकृष्ण की इस प्रकार की करुणा न होती तो, भजन साधन सर्वथा ही निष्फल हो जाता और ब्रजवालाओं के साधन में तो, सम्पूर्ण रूप से सर्वस्व त्याग है। इस साधन का ही महाफल—महारास में मिलन है।

श्रीश्रीमहारास

कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा के दिन कतिपय अन्तरंग भक्तों को संग लेकर महाप्रभु "गुंडीचा" उद्यान में पधारे। गुंडीचा—उद्यान की वन-माधुरी स्वभावतः श्री वृन्दाबन की स्मृति को जगाती है। बहुदूर-व्यापी श्रेणीवद्ध चिरश्यामल वृक्षवल्लरी स्वाभाविक सजीव दशा में कोमल-सौन्दर्य्य धारण कर गुंडीचा उद्यान की नित्य-सम्पद रूप से अवस्थित हैं। कब किसने यह उद्यान रोपण किया था इस बात के जानने का कोई साधन नहीं है, किन्तु वर्तमान समय में उसने स्वाभाविक वनका आकार धारण कर लिया है। स्वभावजात अयत्न परिवर्द्धित पादपावलि, सघन शाखा प्रशाखा विस्तार कर मानों गगन स्पर्श करने की स्पर्धा कर रही हैं। खिजूर, ताड़, नारियल आदि वृक्ष

समूह किसी समय श्रेणी वद्ध भाव से रोपण किये गये थे, इस बातका परिचय इस समय भी कुछ कुछ प्राप्त होता है, किन्तु पलाश, आम और कठहर आदि के वृक्ष बिलकुल ही अस्तव्यस्त हैं और बट अश्वत्थ आदि तो अति प्राचीन हैं; अधिकांश स्थानों में निविड़ लता वितान से घन सन्निविष्ट वृक्षावली का मूल देश लतागृहों से शोभायमान हो रहा है। बड़े बड़े वृक्ष अपने गौरव से अपने आप गौरवान्वित हो रहे हैं। इनके अतिरिक्त जामन, बेल, बकुल, कदम्ब, निम्ब, आदि अनेक वृक्षों से नीलाचल की चिरहरित भूमि सदा ही भक्तों के हृदय में ब्रज बन–माधुरी का भाव उत्पन्न कर देती है। वृक्ष और कुसुमलताओं की अधिकता से इस बन की शोभा औरभी शतगुण अधिक बढ़ रही है। कहींतो नवकिशलयदल से, कहीं सुगंधित मंजरीराशि से कहीं कोमल कोमल कलियों से, कहीं प्रफुल्लित पुष्पपुंज से वृक्ष-वल्लरी शोभायमान हैं। स्थान स्थान पर तुलसी-कानन मूर्तिमती पवित्रता के वेश में गुंडीचा-उद्यान की श्यामल-सम्पत्ति के स्निग्ध कोमल पवित्र भाव को जगा रहा है। वृक्षवाटिका सब चिरगौरवमय भारतीय महर्षियों के पुण्याश्रम के समान हैं।

महाप्रभु ने अन्तरंग भक्तों के सहित उद्यान के भीतर एकान्त स्थान में एक वृक्ष वाटिका में प्रवेश किया। इसके चारों ओर तुलसी–कानन एवं नाना प्रकार के छोटे बड़े फल फूलों के वृक्ष हैं। कुटीर गृह के समीप ही कुछ वकुल तमाल आदि के वृक्ष हैं। वाटिका का पूर्वभाग अपेक्षाकृत अनावृत है। कुटीर का मुख पूर्व की ओर है।

महाप्रभु वकुल वृक्ष के नीचे विराज कर रामानन्द राय से कहने लगे–रामराय! इस समय मेरे मनमें ऐसी वासना है कि, तुम्हारे मुखसे श्रीकृष्ण की रासलीला श्रवण करूं, किन्तु मैं क्या रासलीला श्रवण करने का अधिकारी हूँ? बहुत ही तपस्या के अनन्तर रासलीला के श्रवण करने का अधिकार उत्पन्न होता है। तपस्या तो कितने ही प्रकार की हैं; किन्तु सभी तपस्याओं से रासलीला के अनुभव का

अधिकार प्राप्त नहीं होता। श्री भगवान की प्रेम रसमयी उपासना से जब तक चित्त सुनिर्मल, सुप्रसन्न, परम कोमल और परमोज्वल न हो जाय तब तक रासलीला श्रवण की इच्छा करना विडंबना जनक ही प्रतीत होता है। मैं एक शुष्क सन्यासी हूँ, मेरा इसमें अधिकार नहीं है, यह जानकर भी इसके श्रवण करने में विशेष लाभ हो रहा है। कामनाओं के लिये तो कोई अगम्य स्थान नहीं है। मैं क्या यह अधिकार प्राप्त कर सकूंगा ?

रामानन्द–प्रभो ! अपने दासों का गौरव इसी प्रकार बढ़ाया जाता है। यह अधम विषयी श्रीचरणों का अयोग्य सेवक है। इससे अपना स्वरूप गोपन करना-केवल बंचना मात्र है। अथवा आपकी यह दीनता या अधिकार का प्रसंग उठाना केवल लोक-शिक्षा का बहाना है।

महाप्रभु–स्वरूप ! ब्रजबालाओं की संगवांच्छा पूर्ण करने के निमित्त प्रेममय श्यामसुन्दर ने कुसुमित कुंज वनमें जो रसमयी लीला प्रकाश की थी–उसमें कैसा मनोहर महा मिलन था–कैसी आनन्द की अपूर्व तरंगें थीं। इस आनन्द में बिना नृत्य किये क्या कभी कोई स्थिर रह सकता है, क्यों स्वरूप ? नृत्यमयी रासलीला प्रेम का महा महोत्सव है–आनन्द के अगाध अनन्त वारिधि की दिगन्त प्रसारी उत्ताल तरंगें हैं। उस आनन्द का कुछ वर्णन नहीं होता और हो भी नहीं सकता। तुम और रामानन्द मुझे इस आनन्द की एक बूंद ही आस्वादन करादो। मैं सर्वदा से ही तुम लोगों का ऋणी हूँ।

रामानन्द ने हँस कर कहा—हमें क्या कहना चाहिये ? हमसे जो कुछ कहलाना चाहते हैं सो आप स्वयं ही हमारे कण्ठ से उच्चारण कराइये। यन्त्री यदि अपने यन्त्र को बजावै तो, उस में किसी का भय क्या है ?

मेरो मुख है वीन सम, तुम हो वीनाकार।
जो प्रभु तव मन में लसे, करत वही उच्चार ॥

महाप्रभु—ब्रजबालावृन्द वंशी की पुकार से व्याकुल होकर श्याम दर्शन के लिये बन में आई थीं, क्या कहते हो ? रामराय !

रामानन्द—हां प्रभु ! वंशी ही श्रीकृष्ण की स्वयं दूती है। श्यामसुन्दर की वंशीध्वनी सुन कर क्या कभी कोई स्थिर रह सकता है ? पाषाण गल जाता है, यमुना का प्रवाह उलटा बहने लगता है, तरु लताऐं पुलकित हो जाती हैं, बन के पशु पक्षी पर्यन्त कृष्णचरणारविन्द की ओर आकृष्ट होने लगते हैं, यहाँतक कि, आकाश में चन्द्र, सूर्य आदि ग्रह नक्षत्रों की भी गति रुक जाती है, समस्त ब्रह्माण्ड उसकी झङ्कार से मुखरित हो जाता है।

महाप्रभु—भला, ऐसे समय में ब्रजबालागण किस प्रकार से धैर्य धारण कर सकतीं हैं ?

रामानन्द—हां प्रभु ! जब कि, इस विपुल ब्रह्माण्ड में उस शब्द को कोई भी नहीं सुन पाता है वे उस समय भी उसे सुन कर अधीर हो उठती हैं। वे सब कुलबाला हैं, स्थिर होकर घर में रहना ही उनका ब्रत है। किन्तु वंशी रव को सुन कर उस ब्रत का पालन करना नितान्त असम्भव है।

जब कि महाप्रभु और रायरामानन्द इस प्रकार से कथोपकथन कर रहे थे, उस समय मैं (आत्माराम) भी एक लताकुञ्ज की आड़ में चोर की तरह खड़ा होकर उसे श्रवण कर रहा था, श्रवण करते करते मुझे भी कई एक नितान्त नवीन गान स्मरण हो आये। मैं भी गुनगुन् करके उन्हें गान करने लगा—

सखी सुन, वंशी कौन बजावै ?
नव फूलन की मधुर गन्धहू, मिल सुर सँग इत आवैं ॥
मधुर मधुर वंशी की धुन सुन, कुसुमकली विकसावै ।
नभ में चन्द निरख सखि काहू, मन्दमन्द मुसकावै ॥

कुञ्जन में अलिकुल मिल गुञ्जत, ऐसी मन में भावें।
यमुना की कलकल धुन ता संग, मिल हियकूँ उमगावें॥
अधर परस कर सुघर मुरलिया, पिय की हँसी चुरावें।
तुरतही ताय मिलाय तान में, प्रानन मांहि दुरावें॥

मनमें सोचा था कि, कदाचित् मेरे इस गान को सुन कर स्वरूप पण्डित मुझे अपने निकट बुला लेंगे। किन्तु कुछ भी नहीं--किसी का कोई भी शब्द सुनाई नहीं दिया। फिर सोचने लगा--कदाचित् यह गान इनके मनोनुकूल नहीं हुआ—इसीसे और एक वंशी का पद गान करने लगाः—

मधुर मुरलि बजत आलि, कौनकी सु वन में।
सींचत सखि सुधा कौन, मम नवजीवन में॥
सुनके मुरली की तान, प्रात कमल के समान।
विकश उठे मेरे प्रान, पियके चरनन में॥
शोभा की उठ तरङ्ग, पुलक करत अङ्ग अङ्ग।
चल समीर सङ्ग सङ्ग, प्रान देत तनमें॥
हियमें सुख दुख की घात, होत रहत निशि प्रभात।
और अभी कितनी बात, उठिहैं नइ मन में॥
मेरे मन में सुआश, करत रहत वहु विलाश।
मुरली धुन सुन हुलास, होत चहुँ भुवन में॥

मैं गान गाकर मौन हो गया। इस वार भी कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ा—लता निकुञ्ज के भीतर कोई प्राणी है, इस बात का भी कुछ प्रमाण नहीं मिला। जो मधुर आलाप सुन रहा था, उसका भी कोई अक्षर सुनाई नहीं देता। मन में विचारने लगा—मालूम होता है सब मेरे गान के रस में निमग्न हो गये हैं। मैंने मनके उत्साह से और भी एक गान आरम्भ कर दिया :—

सखीरी निकस चले अब प्रान ।
लै मम नाम बजावत को यह, बंशी की मृदु तान ॥
मैं घर में वह बन में जावत, मग को नहिं पहिचान ।
कहा करूं कैसे उत जाऊँ, दै बताय कछु ज्ञान ॥
एक बेर तो जाय निरखती, तासु मधुर मुसकान ।
गल में माल डाल कह आती, (मैं) विंधी बँसुरिया बान ॥

कहाँ— कुछ भी तो सुनाई नहीं देता । मुझे तो किसी ने भी पुकारा नहीं । कुछ क्षण के अनन्तर मन में विचार ने लगा— मेरा यह गान निश्चय उस राज्य की भाषा में रचित नहीं हुआ—ज्ञात होता है, यह भाव उस राज्य में पहुँचने के उपयुक्त नहीं है । इसी से यह वंशी का गान मैं अपने प्राणनाथ के कर्णगोचर नहीं करा सका । परन्तु हाय, मैंने यह क्या किया — वंशी का गान गाने लगा—अमृतमयी रासलीला की कथा कुछ सुनी ही नहीं—मन में बड़ा अनुताप हुआ । उझक उझक कर देखने लगा, कहीं भी कोई दिखाई नहीं देता । यह क्या अपराध हुआ ? फिर स्थिर होकर वृक्ष के नीचे बैठ गया और अपने अपराध को क्षमा कराने के निमित्त शान्त चित्त से श्रीगौर नाम जप करने लगा । कुछ क्षण के अनन्तर ही निमीलित नेत्रों के सन्मुख कनक कान्ति श्रीगौरचन्द्र की मधुर किरणें प्रकाशित हो उठीं—उधर की ओर देखा तो, सभी बिराजमान हैं—पूर्ववत वार्तालाप चल रहा है । स्वरूपपण्डित एक वंशी का माहात्म्य सूचक गान गा रहे हैं :

वंशी बड़ो डकैतन सजनी, दिनधौरे डाँके डारै ।
सरबस छीनों धड़कत हीयो, ना जानूं इम क्यों मारै ॥
यह नहिं जानीं ऐसी है वो, करी प्रीत सुनतहि मैंने ।
प्रीत छिपाय नाथ क्यों राखी ? विकल करत, देखी तैंनें ॥

खातैं सोतैं कछु न सुहावत, कान सुनत नहिं कछु मेरे।
सभी छुड़ाय बनाय बावरी, प्रान किये तानैं चेरे॥
धीरज धरम शरम सब नश गई, मरी मरम की चोट लगी।
एक अकेली वंशी मेरी, मैं वंशी के सुरन पगी॥

स्वरूप पण्डित के मधुर गान को श्रवण कर श्रीमहाप्रभु भाव में निमग्न हो गये। मस्तक पर स्वेदविन्दु दिखाइ देने लगे—श्रीमुख-मण्डल आनन्द से प्रफुल्लित हो उठा—रायरामानन्द प्रति सूक्ष्मदृष्टि से निरीक्षण कर स्वरूपपण्डित से मृदु मधुर स्वर में कहने लगे—यह देखिये, प्रभु के नेत्र दोनों तो खुले हुए हैं, किन्तु वाह्यज्ञान रहित हैं—तनिक सूक्ष्म भाव से देखिये, श्रीप्रभु के मुखमण्डल पर कलकिंचित भावराशि क्षणक्षण में परिस्फुट हो रही है। मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि, श्रीप्रभु रस-रस के आस्वादन में सम्पूर्णरूप से विह्वल हैं। आहा, यह रस भाषा द्वारा प्रकाशित होने की वस्तु नहीं है—यह केवल आस्वादन का विषय है—और वह आस्वादन भी मूक पुरुष के आस्वादन के समान है। आनन्द के महासागर में चारों ओर से आनन्द-सरिता उत्ताल-तरङ्ग उत्तोलन पूर्वक कलकल ध्वनि करती हुई महा आनन्द नृत्य में सम्मिलित हो रहीं हैं—और सभी यह विचार रही हैं कि, महासागर हमारा ही है। श्रीप्रभु इस रासलीला के सुधास्वादन में मग्न हैं। पण्डित महाशय ! श्रीप्रभु के मुखमण्डल पर इस प्रकार का हर्षोत्फुल्लभाव इससे पूर्व तो कभी नहीं देखा था। कैसा उज्वल कैसा मधुर, कैसा परमानन्दमय है ?

स्वरूप—मैंने अपने मन में विचार किया था कि, रासलीला के दो-एक पद और भी गान करूंगा—परन्तु वृथा है। प्रभु के श्रीमुख का भाव सन्दर्शन कर गान की भाषा एकवार ही स्तम्भित हो गई है। प्रभु इस समय अपने अनुभवानन्द में मग्न हैं—और हम लोगों को भी आनन्द क्या कम है ? हमलोगों को तो उनके मुखमण्डल

में रासरस सन्दर्शन का सुयोग प्राप्त हो गया है। जबतक यह सौभाग्य रहे तबतक इसी का दर्शन करें।

यह कह कर श्रीस्वरूपदामोदर एवं रायरामानन्द दोनों महा-योगी के ध्यान के समान श्रीश्रीगौरचन्द्र के श्रीमुखमण्डल के अनन्त आनन्द की भाव छवि को दीर्घ समय तक सन्दर्शन करने लगे। क्षण-क्षण, पलपल काल व्यतीत होने लगा। रजनी का प्रायः अवसान हो आया--अत्यन्त धीरे धीरे महाप्रभु के बाह्यज्ञान का सञ्चार होने लगा। अतिशय व्याकुल होकर कहने लगे--स्वरूप, तुम मुझे यहाँ कहाँ ले आये हो, ऐसे पूर्णानन्द की निद्रा से भी क्या किसी को जगाना उचित है? यह रास का मिलन और नृत्य कैसा सौन्दर्यमय-कैसा माधुर्यमय-कैसा आनन्द मय है-- ? असंख्य आनन्द मूर्तियों ने अनन्त दिशाओं से आकर श्यामसुन्दर को चारों ओर से भली प्रकार से घेर लिया। किन्तु श्यामसुन्दर में भी ऐसी बिचित्र शक्ति है कि, वे भी उनमें अनन्त रूप धारण कर खड़े हो गये, जितनी गोपी उतने ही कृष्ण। प्रत्येक ब्रजवाला अपने अपने निकट श्यामसुन्दर को निरीक्षण कर उनके सहित सम्मिलित हो गईं, आनन्द के प्रवाह-तरङ्ग में रास का नृत्य प्रारम्भ हुआ, मानों नव मेघ में सौदामिनी क्रीड़ा कर रही हैं; कैसी सुन्दर, कैसी मधुर, कैसी मनोहर बात है, यह क्या किसी से कहने की बात है? और यह क्या कहीं—कहते कहते महाप्रभु की वाणि गद्गद् हो गई। वे सहसा प्रमत्त भाव में खड़े हो गये, एक हाथ से एक ओर स्वरूपपण्डित को, दूसरे हाथ से दूसरी ओर रायरामानन्द को अपनी ओर खैंच कर उनके बीच में खड़े हो गये। दोनों ओर दोनों अन्तरङ्ग पार्षदों को लेकर महाप्रभु ने आनन्द की तरङ्ग में "जय जय श्रीगोपीजनवल्लभ" कह कर विविध नर्तनकलापूर्ण नृत्य आरम्भ कर दिया।

देखते देखते मैं मूर्छित हो वृक्ष के नीचे गिर पड़ा--जब चेतन

हुआ तब देखा तो कहीं भी कुछ नहीं है ; सभी अन्तर्धान हो गये। मैं धीरे धीरे गम्भीरा मन्दिर को लौट आया--आकर देखा तो श्रीप्रभु गम्भीरा मन्दिर के भीतर बैठे हुये विरह व्याकुल अवस्था में रोदन कर रहे हैं और समीप में स्वरूपदामोदर एवं रायरामानन्द बैठे हैं।

माथुर-विरह

दिन चले जाते हैं—सुख दुख की स्मृति को छोड़कर पक्ष-मास-वर्ष व्यतीत हो जाते हैं, उनके साथ साथ मनुष्य के सुख दुख की स्मृति भी धीरे-धीरे पुछ जाती है। किन्तु कोई कोई स्मृति विलुप्त नहीं होती—वह रावण की चिता के समान रात दिन जलती रहती है—वह स्थायी भाव के साथ मिलजुल कर एक हो जाती है। सुख दुख के अनन्त संचारी भावों की छोटी बड़ी तरंगें इस भाव के ऊपर आती हैं और चली जाती हैं—किन्तु स्थायीभाव नित्य और निरंतर बना रहता है।

श्रीगौराङ्ग लीला में विप्रलम्भ रस ही स्थायी रस है—इस लीला के आरम्भ से अन्त तक केवल श्रीभगवत्-विरह की ही तीव्रवेदना दिखाई देती है। रासरस का आनन्दास्वादन स्वप्न की तरह तिरोहित हो गया—श्रीकृष्ण विरह का स्थायी भाव श्रीप्रभु के हृदय में उसी समय जाग उठा। देखते-देखते माघ का महीना आगया। प्रेमिक-भक्तों के चित्त में माघमास की स्मृति चिरकाल से विषादमयी है। इसी माघ के महीना में महाप्रभु श्रीनबद्वीप नगर को अन्धकार कर घर से बाहर हुए थे। कदाचित् इसी माघ मास में श्रीवृन्दावनबिहारी ने भी ब्रजवासियों को विरह सागर में डुबाकर मथुरा गमन किया था। माघ का महीना आते ही प्रभु के हृदय में ब्रज-विरह की वेदना शत-गुण अधिक हो उठती है।

वही माघ मास आगया। प्रभु के हृदय में विरह की अग्नि एकवार ही प्रबल वेग से प्रज्ज्वलित हो उठी। अन्तरंग भक्तगण उनको लेकर व्याकुल हो उठे। रात दिन केवल हा हाकार-केवल दीर्घ निश्वास-एवं वर्षा की धारा के समान अश्रुधारा बहने लगी। प्रभु का मुखमण्डल पीला पड़ गया है—घोर बिषाद ही विषाद में श्रीअंग अवश और क्षीण हो गया है। न कुछ अहार करते हैं—न निद्रा आती है—यहां तक कि, अन्तरङ्ग भक्तों के साथ भी वार्तालाप बंद हो गया। प्रभु की श्रीमूर्ति के दर्शन मात्र से हृदय विदीर्ण हो उठता है—विशेष कर कोमल प्राण व्यक्तियों के लिये तो, यह दृश्य देखना एक प्रकार असम्भव हो गया है। श्रीगोबिन्ददास के प्राण ओष्ठगतहो उठे हैं—अनेक यत्न करके भी प्रभु के श्रीमुख में एक विन्दु जल तक देने में असमर्थ हैं। अन्तरङ्ग संगी श्रीपाद स्वरूप दामोदर एवं श्रीरामानन्दराय गान और कृष्णकथा द्वारा कभी-कभी तो उनकी विरह मूर्छा भंग करने में कृतकार्य हो जाते हैं—और कभी ये भी निराश हो जाते हैं।

समवेदना की बात सुनते ही चित्त का भाव समय-समय पर कुछ कम हो जाता है। इसीलिये श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरामानन्दराय जब ब्रजविरह के गान या बातें छेड़ते हैं, तब महाप्रभु उनको अति आग्रह के सहित श्रवण करते हैं, और इन दोनों से दो एक बातचीत भी करते हैं।

बसंत पंचमी का दिन है। संध्या का समय है। आकाश में चन्द्रोदय हो गया है। स्वरूप, रामराय एवं और भी कई एक मर्मी भक्त महाप्रभु को घेरकर बैठे हैं। महाप्रभु स्वरूप के गले में भुजायें डालकर आकुल कंठ से कहने लगे - प्राणों के सखा! मुझे सर्वदा से तुम्हारा सब का ही एकमात्र भरोसा है। श्रीवृन्दावन-रस-सुधा के अतिरिक्त इस जीर्ण हृदय की दारुण पिपासा के शान्त होने का अन्य कोई उपाय नहीं है।

श्रीप्रभु की बात समाप्त होने से पूर्व ही उनके हृदय का भाव जानकर श्रीस्वरूप का कंठ आकुल तान से बज उठा:—

दरशन को सुख होन न पायो, विधि ने कीयो बाध।
अंकुर होतहि नाश कियो सब, मेरो बिन अपराध॥
सुखमय सागर सकल सुख कै, भयो सु मरु समान।
निरख निरख श्यामल-जलधर कू, चातक तजे परान॥
कछु चाहत चित कछु कियो विधि, प्रान हुँ निकसत नाहिं।
सजनी! दरस भयो नहिं ताको, चाह रही मन माहिं॥
छटपटात हिय निशिदिन पिय बिन, दै कछु जतन बताय।
और उपाय अपाय भये अब, श्याम सुनाम सुनाय॥

महाप्रभु उत्कंठित भाव से कहने लगे—स्वरूप! यह गान तो मेरे प्राणों की तान है। मेरे ही भाव की प्रतिध्वनि है—कैसा मर्म-स्पर्शी है?

स्वरूप उत्साह के सहित बोले—अच्छा तो इसी भाव का एक गान और भी श्रवण कीजिये:—

सखी! मोसों बिछुरो निठुर कन्हाई।
प्रेम सु अंकुर होय नशानों, पात न दिये दिखाई।
जानत कौन चकोरकु चन्दा, ह्वै है इम दुख दाई॥
प्रति पद चन्द छिपो छिन ही में, निशि सुख आश नशाई।
माधविकुंज होत ही कुसुमित, मधुप ताहि बिलगाई॥
श्याम चरित लखि मैं यह जानी, विधि की विध बिगराई।
पापी प्रान अबहु ताके हित, रहत सदा अकुलाई॥

महाप्रभु अवरुद्ध कंठ से कहने लगे—हाय, ऐसे प्रियतम की ऐसी शठता? जो कल ही लौट आने की अवधि कर गये थे, वे अभी तक नहीं आये; कैसी कठिन निठुरता है?

रामराय अति आग्रह के सहित बोल उठे—श्रीपाद स्वरूप ने उस दिन वकुल वृक्ष के नीचे इसी भाव का एक अति मनोहर पद गान किया था।

महाप्रभु घबड़ा कर कहने लगे—अच्छा तो स्वरूप! उसी पद को गाओ।

स्वरूप ने कुछ सोचकर कहा—उस प्रकार के और भी दो पद मुझे याद हैं गाता हूँ, सुनियेः—

कल आवन कह जु गये पिय मधुपुर,
कल में और कितेक जु बाकी।
नव जोवन-जल जो जात ढलो सखि!
रोक सकै यह समरथ काकी॥
नार को जोवन धार को पानी,
जाय चलो फिर आवत नाहीं।
प्रान रहैं तो मिलैं पिय फेर हू,
जोवन फिर न मिलै जग माहीं॥
सखि! जोवन फूल खिलन पायो नहिं,
ताहि छांड़ के मधुप सिधारो।
मम पूरन जोवन यों हि गयो यह,
फिर नहिं आयो प्रान पियारो॥
जाओ सबै तुम जान कै आओ,
फिर ब्रज कान फिरै कै नाहीं।
इत आवन होय न तासु सखी तो,
मधुपुर जाय मिलूँ मैं वाही॥

महाप्रभु ने हँसकर कहा—यही गोपी भजन की माधुरी है—नव यौवन के भरपूर अनुराग के विना, रसमय श्यामसुन्दर का सरस भजन नहीं हो सकता—यही बात कवि ने इस पद में मधुर और सरल भाषा में स्पष्ट कही है। हां, इससे आगे?

स्वरूप ने कहा-इससे आगे और भी एक पद है। उसके रचयिता भी श्रीब्रजरस माधुर्य के अमर कवि हैं। उसे भी श्रवण कीजिये:—

वरस बीत आई वसंत रुत, कोकिल कूजत डार।
माधवि-लता खिली कुंजन में, भ्रमर करत गुंजार॥
सुन्दर केश सुचारु वेश युत, नव जोवन-धन मान।
मधुपुर श्याम रहैं तो हैं सब, व्यर्थहि धूर समान॥
है को ऐसी मधुपुर नागरि, नागर लिये लुभाय।
मम मुख पंकज को मधुकर तहँ, बँधो जाल में जाय॥
सजनी! मथुरा जाय जनाओ, ताय विरह की बात।
ताकी तुमहु जान आओ सब, झूँठ साँच की घात॥

स्वरूप का गान समाप्त होने भी नहीं पाया कि, भाव विह्वल महाप्रभु के नेत्रों से झर झर कर अश्रुधारा बहने लगी और वास्परुद्ध कंठसे गद् गद् होकर कहने लगे-यदि यौवन का पूर्ण अनुराग श्यामसुन्दर की सेवामें समर्पित नहीं होता है तो, वह वृथा नहीं तो और क्या है? नवयौवन के पूर्व राग में प्राणों के प्राण, आत्मा के आत्मा रसमय श्यामसुन्दर का भजन ही गोपी भजन है; अति सुन्दर भाव हैं। इन पदों के रचयिता प्रत्यक्ष लीलादर्शी एवं भावसागर के तलस्पर्शी हैं। हां, इसके अनन्तर, स्वरूप?

महाप्रभु की, लीलागान श्रवण करने की पिपासा की किसी प्रकार जैसे तृप्ति नहीं है, वैसे ही श्रीपाद स्वरूप का मधुर-रसात्मक

लीलापदों का भंडार भी अखंड है। स्वरूप प्रभु का भाव समझकर फिर गाने लगेः—

अंकुर होतहि जरै ताप सों, तो का करि है मेह।
जाको जोवन जाय विरह में, ताकू का पिय नेह॥
सिंधु समीप कंठ यदि सूखै, तो किम बुझै पिआस।
चन्दन तरु छांड़ी शीतलता, चन्द देत तन त्रास॥
हे हरि! जामें इतनि निराशा, सो कैसौ अनुराग।
चिन्तामन नें निज गुन त्यागे, मेरे अतहि अभाग॥
सामन मास बूंद नहिं बरसै, सुर तरु हू जरि जाय।
गिरवर हू में ठाम मिलै नहिं, तो का होय उपाय॥

श्रीपाद स्वरूप नयनों से अश्रुवर्षण करते हुए गान समाप्त कर वास्परुद्ध कंठ से कहने लगे- मेरी दशा भी यही है, ऐसे रसमय प्रेम-सरोवर के समीप रहकर भी ब्रजरस से वंचित रहा—हृदय वही मरु-भूमि का मरुभूमि बना रहा। यह कहकर स्वरूप रोदन करने लगे-नयन जलसे मुख कमल परिप्लुत होगया। महाप्रभु अपने निज करकमल से इनके और रामराय के अश्रुमार्जन कर कहने लगे—कहां तो तुम लोगों को मुझे शान्त करना चाहिये—कहां तुम स्वयं अधीर हो उठे—ऐसी दशा में मेरा क्या उपाय होगा? स्वरूप! मुझे और भी एक गान स्मरण हो आया; उसमें श्रीमती राधिका की पूर्व स्मृति मिली हुई है।

महाप्रभु की बात पूर्ण होते ही स्वरूप कहने लगे-समझ गया-"माधवि तल नित बैठ" यही पद है न? अच्छा श्रवण कीजियेः—

माधवि तल नित बैठ योगिसम, करतो जो मम ध्यान।
ताके विन अब निकसत क्यों नहिं, मेरे पापी प्रान॥
मेरे संग रंग कौतुक कर, विचरत हो वन मांहिं।
कुसुम चयन कर सेज साजतो, रस पोषन के तांहि॥

लै निज अंक मोय निशि जग कै, करतो हो रति केल।
ऐसे गुणवारे पिय कों तज, कासों करूं सुमेल ॥
गये बहुत दिन पिया न आये, मिलौ न कछु संवाद।
चलूँ सखी! मैं हीं कह आऊँ, अपनो विरह विषाद ॥

श्रीपाद स्वरूप ने इस पद को इस प्रकार के मधुर आलाप के सहित गान किया कि, इतने वर्ष व्यतीत होने पर भी उसकी झंकार मेरे कानों में अब तक गूंज रही है। मैं भी इस गान को श्रवण कर अधीर हो गया था। महाप्रभु बहुत देरतक कुछ अनमने से रह कर कहने लगे-स्वरूप! पिपासा की तृप्ति तो नहीं हुई- हां, इससे आगे?

स्वरूप ने कहा- प्रभो! श्रीमती कृष्ण विरह में धीरे धीरे ऐसी निराश होगईं कि, उनको अब सखियों के प्रबोध-वाक्यों में भी विश्वास नहीं रहा। यह बात इस गान से ज्ञात हो जायगी:—

श्याम कूं क्यों मेरो बतरावै।
विरह पयोधि तरू मैं का विधि, मन नहि अब पतियावै॥
छिन छिन कह कै दिनन गमाये, दिन कह मास वितावै।
मास मास कर वरष विताये, जीवन कूं तरसावै॥
या विधि समय नशाय सखी अब, तन की आश नशावै।
जारै चन्द किरण नलिनी तो, किम वसंत सरसावै॥
कहत सखी सुन प्रान पियारी, अब मन मत पछतावै।
सुन्दर-श्याम तोहि मिलवे कौं, झटपट ही अब आवै॥

महाप्रभु नेत्रों में अश्रु भरकर कहने लगे-रामराय! श्रीकृष्ण ही गोपियों के जीवन हैं कृष्ण के बिना वे एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकतीं। जिस प्रकार जल के बिना मीन या वायु के बिना अन्य जीव क्षण भरभी जीवित नहीं रह सकते, उसी प्रकार श्रीकृष्णहीन

गोपियों का जीवन भी असम्भव है। श्रीमती राधिका का तो बिलकुल ही कृष्णमय जीवन है-श्रीकृष्ण ही उनके कंठके श्वास हैं श्रीकृष्ण ही उन के हृदयके स्पंदन हैं जिस प्रकार सिन्धु को छोड़कर विन्दु भूमि पर गिरते ही सूख जाता है, उसी प्रकार ब्रजका प्रेम जीवन है।

रामराय सजल नयन हो, दीर्घ निश्वास लेकर कहने लगे हां प्रभो! श्रीपाद स्वरूप पंडित के गान से जबकि मेरे ही प्राण विरह वेदना का अनुभव करने लगे हैं, तब श्रीमती की कृष्ण-विरह यातना कितनी कठिन होगी, उसका अनुमान करना भी असंभव है।

महाप्रभु कहने लगे- स्वरूप! तुम्हारे गान से माथुर-विरह मानों स्पष्ट ही मूर्तिमान होकर यहां उपस्थित है। इसमें श्रीमती के हृदय में कितनी वेदना होती होगी, यह वास्तव में हम लोग अनुभव नहीं कर सकते। श्रीमती की अधीरता अत्यन्त असह्य है—सुनते ही हृदय फटता है-परन्तु बिना सुने भी नहीं रहा जाता। हां, इसके अनन्तर ?

स्वरूप—इसके अनन्तर श्रीमती की अधीरता और व्याकुलता का और एक पद सुनियेः—

मूड़ मुड़ाय बनूं जोगन मैं, जो पीतम नहिं आवै।
नव-जोवन धन मोय सखी अब माटी सम न सुहावै॥
कानन कुंडल वसन गेरुआ तनमें भसम रमांऊं।
जोगन वेश बनाय सु सजनी पीतम के ढिग जाऊं॥
ढूंढूं मथुरा नगरी घरघर, जो वह कहूँ मिल जाय।
तो मैं तुरतहि निज अंचल सौं बांध कै लाऊं ताय॥

महाप्रभु—रामराय! श्रीमती का साहस और जोर तो देखो। श्री राधिका के अनुराग की ऐसी महिमा है कि, श्रीकृष्ण बहु वल्लभ हैं, इस बातका ज्ञान तक नहीं है—वे उनको देखते ही वसन द्वारा बांधने को तैयार हैं। एक मा यशोदा ने अति सौभाग्य से उस अखिल

विश्वाधार को अपने वात्सल्य-प्रेम-दाम से बंधन किया था-आज श्रीमती उनको अपने अंचल से बांधने को उद्यत हैं।

स्वरूप:--

अपने पिय कूँ बांध जु लाऊँ, रोक सकै को ताकूँ।
रोकै कोऊ तो तज जीवन, वधिक बनाऊँ वाकूँ॥
यह सुन वचन सखी पुन बोली, सुनो पियारी राधा।
तव जोगन बनवे में कुल की, कान करेगी बाधा॥

महाप्रभु विरह व्याकुल हो कहने लगे- हाय, कैसी यातना है- यह कैसा मर्मस्पर्शी श्रीराधानुराग का पद है-कैसा कठिन विरह है। इस विरह में भी क्या जीवन धारण किया जा सकता है ? हां, इसके अनन्तर स्वरूप ?

स्वरूप-इसके अनन्तर श्रीमती प्राण परित्याग के लिये तैयार हो कहने लगीं:—

जाके शीतल अंग परस हित, तजो धरम धन मान।
सो न मिलै तो दै सखि विष अब, तजूँ पान कर प्रान॥
तुम क्यों रोवत सखी मरेपै, करियों एतो काम।
बिना बहाए और जराए, रखियों तन ब्रजधाम॥
मेरे भुज बंधन कर रखियों, श्याम तमाल की डाल।
अंग सु श्याम नाम लिख दीजों, गल तुलसी की माल॥
ललिता और विशाखा ले ओ.........
चित्रा तू ले-

गाते गाते स्वरूप का कंठ रुक गया। महाप्रभु ने अति कष्ट से धैर्यधारण कर, स्वरूप के नेत्र जलको पोंछते हुये; उन्हें अपनी गोद पें ले लिया। रामराय मस्तक अवनत कर रोदन करने लगे।

स्वरूप कुछ काल के अनन्तर किंचित् धैर्यधारण कर कहने लगे–प्रभो ! अभी गान शेष नहीं हुये हैं। अभी और भी दो एक पद गान करूंगा। स्वरूप का कंठ स्वर रुक-सा रहा है-उन्होंने गान तो आरम्भ कर दिया, किन्तु ठीक ठीक नहीं गा सके। कंठ मानों स्तंभित हो रहा है, परन्तु गान की तान हृदय फाड़कर निकलना चाहती है। स्वरूप के वक्षस्थल पर प्रवल दवाब पड़ रहा है। करुणामय प्रभु ने स्वरूप के वक्षस्थल पर–जैसे ही अपना कर कमल स्पर्श कराया, वैसे ही स्वरूप पुनः गान करने लगेः—

सखी मैं मरूं सुनिश्चै मान। कौन कू सौंपूं श्याम सुजान ॥
रहो सव मरण समय में संग। लिखो मम श्यामनाम प्रति अंग ॥
दीजियो ललिता नाम सुनाय। गिरै जव मेरो तन भैराय ॥
नदी में दीजों मती बहाय। आग में दीजों मती जराय ॥
बांध तन रखियों श्याम तमाल। कभी निकलै इत सों नँदलाल ॥
करूं दरशन पीतम मुखचन्द। प्रानपुन मिलें हौंय आनन्द ॥
मिलैं यदि मोय न कृष्णमुरार। तजू तन विरह अनिल में जार ॥

इस गान के आरम्भ से ही महाप्रभु के नयन ऊपर की ओर चढ़ने लग गये थे—नयनों के तारे स्थिर होगये थे। रामराय प्रभु का भाव जान कर उन्हें पकड़ कर वैठ गये। प्रभु आधे गान के बीच में ही कांपते–कांपते रामराय की गोद में मूर्छित हो झुक पड़े। स्वरूप ने अपने हृदय के भाव को दवा कर फिर गान प्रारम्भ कर दिया।

याविध कहत कहत प्यारी नें, सुधबुध सव तजदीनी।
धाय विशाखा तुरत हि ताकूं, निज सुअंक गहि लीनी ॥
थरथर कांपत अंग चलत हैं, अतहि मंद निश्वासो।
नाशा-सन्मुख रुइ धर देखत, जीवन की तज आशा ॥

श्रवण सुनावत सब सखि मिलकैं, सुमधुर कृष्ण कौ नाम।
चेतन पाय चकित व्है पूंछत, हैं कहाँ पिय घनश्याम ॥
सन्मुख देख तमाल वृक्ष कूँ, वन बौरीसी राधा।
ताके आलिंगन हित धावत, सह तन मन की बाधा ॥

स्वरूप के नयन दोनों सूखे हुये हैं। दृष्टि उदास है, मानों आत्म विस्मृति के कारण उन्मत्त हो गये हैं। स्वरूप गान छोड़ कर उच्चै स्वर से कृष्णनाम कीर्तन करने लगे। अनेक समय के अनन्तर महा-प्रभु में अर्ध-वाह्य-दशा के चिन्ह दिखाई देने लगे। उनका मुख-मण्डल प्रफुल्लित हो उठा।

रामराय स्वरूप को इंगित द्वारा दिखाकर कहने लगे। श्रीपाद! प्रभु की वदनकान्ति दर्शन कर ऐसा प्रतीत होता है, मानों विरह-विधुरा श्रीमती राधिका की दूती, श्रीकृष्ण के पुनरागमन का संदेस लेकर आई है।

स्वरूप प्रफुल्लित होकर कहने लगे—"मुझे भी मानों ऐसा ही प्रतीत होता है।" यह कहकर सुमधुर कंठ से पुनः गान करने लगे।

स्वरूप के गान को श्रवण कर महाप्रभु ने नेत्र खोल दिये। किन्तु उनकी चितवन से ऐसा ज्ञात होता था कि, अभी पूर्ण रूप से वाह्यज्ञान नहीं हुआ है। प्रभु के नेत्र युगल सरस, सहर्ष एवं शतदल पद्म के सदृश प्रफुल्लित हैं। अति क्षीण स्वर से टूटे फूटे शब्दों में कहने लगे—ललिते! तनिक आगे बढ़कर देख तो—प्यारे अभी कितनी दूर हैं?

यह कहकर ही मानों आनन्द आशा से तनिक मृदु मुस्क्यान कर, फिर नेत्र बंद कर लिये। वह मधुर मुस्क्यान मानों कोमल अरुण विम्बाधरों में ही लगी रह गई। स्वरूप और रामानन्द इस अर्ध विकशित मधुरोज्वल हर्ष-प्रफुल्ल श्रीमुख कमल के संदर्शन सुधा सागर में मग्न हो गये।

मधुरमिलन

विरह का माघ समाप्त हो गया। अब मिलन का वसन्त आ गया। गंभीरा उद्यान के शुष्क वृक्षों में मौर आ गया। बसन्त के फूल खिलने लगे। अलिकुल की मधुर गुञ्जार से कुसुम कानन मुखरित हो उठा। पिक बन्धु के उन्मत्त कोलाहल से शुक के हृदय में भी रस का राग झंकारने लगा। श्यामा सीटी बजाकर गाने लगीः—"श्याम कदाचित् आय रहे हैं" इसकी चारों ओर प्रति ध्वनि हुई—"श्याम पिया अब आय गये हैं"। कुसुम सुगंधित-समीरणने दशों दिशाओं में संवाद सुनाया- "देख श्याम अब आय गये हैं"। सर्वत्र आनन्द का प्रवाह बहने लगा। आकाश में प्रेम-पूर्णिमा का उदय हो गया। रसमय श्याम की बंशी बज उठी। महाप्रभु का श्रीअंग पुलक से परिपूर्ण हो गया। मुख की कान्ति रक्त वर्ण हो गई। आनन हर्ष भाव से समुज्वल हो उठा। समस्त वदन कुसुम कालिका की भांति प्रफुल्लित हो उठा। प्रभु के इस प्रकार के भाव का दर्शन कर स्वरूप और रामानन्द के आनन्द की सीमा न रही। स्वरूपने प्रभु के भावानुसार गान प्रारम्भ कर दियाः—

बहुत दिनन में पीतम आये, बिन देखे तज देती प्रान।
अबला हिय हौ तौ सहलीनों, नहिं तो फट जातो पाषान॥
दुखिया के दिन दुख सों बीते, तुम तो रहे कुशल सों श्याम?
हौं अपनों दुख, दुख नहिं मानत, तव सुख ही मेरो आराम॥
वे दुख के दिन दूर गये अब, खोयो रतन मिलो पुन आन।
कोकिल मङ्गल-गान सु गाओ, भ्रमर सुनाओ मधुरी तान॥
मलय पवन अति मन्द वेहो अब, गगन उदय होओ तुमचन्द।
दूर भये अब सब दुख मेरे, ब्रज में आये आनँदकंद॥

स्वरूप के हर्ष पूर्ण मधुर स्वर से महाप्रभु मानों जाग से उठे--किन्तु उनका यह जागरण प्राकृत जगत् का सा साधारण जागरण नहिं है। श्रीमती राधिका के भाव में विभावित श्रीगौराङ्गसुन्दर श्रीराधिका के भाव में जागरित हो, मृदुल मधुर गद्‌गद् कंठ स्वर में अस्फुट भाव से कहने लगे—"आओ आओ प्यारे आओ" यह कह कर ही मौन हो गये। मुखमण्डल पर मधुर मृदुल हास्य छटा तो दिखाई देती है—किन्तु शब्द कोई प्रस्फुटित नहीं होता है। इसके अनन्तर स्वरूप ने अति मधुर स्वर से यह दोहा पढा:—

आओ प्यारे बैठिये अंचल दऊं बिछाय।
नैनन भर दरशन करूं अब विधि भयो सहाय ॥

महाप्रभु इसे श्रवण कर सतृष्ण नेत्रों से देखते ही रह गये। नयनकोण आनन्दाश्रु से परिपूर्ण हो उठे। स्वरूप मौन होकर प्रभु के श्रीमुख का नव सौन्दर्य दर्शन करते हुये देखने लगे कि, श्रीप्रभु के होठ काँप रहे हैं, किन्तु मुख से कोई वाक्य वहिर्गत नहीं होता। महाप्रभु ने सहसा युगल नयन निमीलन कर लिये। समग्र मुख मण्डल पर एक अदृष्टपूर्व महाभाव लक्षित होने लगा। स्वरूप ने भावान्तर देखकर और एक गान आरम्भ कर दिया :--

मिले परस्पर होय प्रफुल्लित, निरख दुहुँ मुखचन्द।
मानों जलद मिलो चातक कूं, और चकोरहि चन्द ॥
आधो रूप दोउ दोउन को, निरखत आधे नैन।
रस आवेश अवश व्है दोउ, झुकि झुकि पावत चैन ॥
सुखमय श्याम परस प्यारी तन, मानत नव नवनीत।
गिरत गात आनन्द भार सों, पगे दोउ रस प्रीत ॥
अतशी कुसुम समान श्याम तन, नागरि चंपक रंग।
जिम जलधर में शशि सोहत है, तिम प्यारी पिय अंग ॥

विगलित केश वेश दोउन के, वाढी सुरत उमंग।
डूबे दोउ प्रीति रस-सागर, उछलत प्रेम तरंग॥
देखत दोऊ रूप माधुरी, सजे सकल शुचि साज।
मिले प्रेम रस पान करन हित, महा भाव रस राज॥

स्वरूप ने हर्षोत्फुल्ल कंठ से गान समाप्त किया। रामराय-विस्मय-विस्फारित नेत्रों से देखते हुये आनन्दपूर्ण कंठ से कहने लगे-चमत्कार! अति चमत्कार! मधुर मिलन महा सम्मिलन है। अब की हम लोगों ने अपने नेत्रों के सन्मुख जो महामिलन का प्रत्यक्ष दर्शन किया है, मालूम होता है, ऐसा मिलन श्रीवृन्दावन की निभृति- निकुञ्ज में भी कभी किसी के दृष्टि गोचर नहीं हुआ होगा। श्रीरूप ने यथार्थ ही कहा है--"चैतन्याख्यं प्रकटमधुना यद्वयं चैक्यमाप्तं"।

रामराय का वाक्य शेष होते ही स्वरूप बोल उठे—"राधा भाव द्युतिसुवलितं नौमि कृष्ण-स्वरूपं" और यह कहकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में गिर पड़े; रामानन्दराय भी विह्वल की भांति महाप्रभु के श्रीमुख-मण्डल का दर्शन करते करते आनन्द में मूर्छित से होगये।

आत्म-निवेदन

गंभीरा मंदिर निस्तब्ध एवं नीरव है। किसी का शब्द तक सुनाई नहीं देता। विशाल नील गगन के मध्य भाग को अतिक्रम कर, पूर्णिका का चन्द्रमा पश्चिमाकाश की ओर क्रमशः झुका जा रहा है। शंकर और गोविन्द एक कोने में बैठे हुए हैं। रात्रि प्राय तीन प्रहर व्यतीत हो गई। गम्भीरा मन्दिर के कुसुमकानन की कुसुम सुरभि-परिशीलित बसन्त समीर धीरे-धीरे वृक्षों की पत्रावली को कम्पायमान करती हुई बह रही है, बीच-बीच में कोकिल कुहू कुहू शब्द द्वारा उस

निस्तब्धता को भङ्ग करती हुई रात्रि के नीलाकाश में अपने मधुरख को मिला रही है।

अनेक क्षण के अनन्तर जब महाप्रभु को बाह्यज्ञान हुआ, तब उन्होंने नेत्र खोलकर देखा तो—स्वरूप उनके चरणों में पड़े हुये हैं और रामानन्द भाव में मग्न हैं। शंकर और गोविन्द सब भावों को भूलकर केवल प्रभु की चेतना की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन्होंने जैसेही देखा कि, श्रीप्रभु को बाह्यज्ञान हो गया है, वैसे ही चट दौड़कर प्रभु के समीप आ गये। इनकी पहचल सुनकर स्वरूप उठ बैठे।

प्रभु सुमधुर कोकिल कंठ से पूछने लगे--तुम लोगों को मधुर-मिलन का दर्शन तो स्पष्ट हो गया ?

स्वरूप हँसकर कहने लगे—मधुर मिलन का प्रत्यक्ष दर्शन तो हम नित्य ही करते हैं, परन्तु हम लोग नेत्र होते हुए भी अंधे हैं; इसी से उसे सर्वदा नहीं देख पाते। किन्तु आज उस के दर्शन का पूर्ण सौभाग्य प्राप्त हो गया है।

रामराय हाथ जोड़कर विनीत भाव से कहने लगे—हे रसराज-महाभावमिलितमूर्ते ! आज आपने जो दिव्य नेत्र दीये हैं उन्हें कृपा कर अब ले न लें। इस मिलन का माधुर्य दर्शन केवल आपके इन श्रीचरणों के प्रसाद से ही प्राप्त होता है। जो लोग आपके श्रीचरणों के शरणागत हैं—यह सुधा माधुरी केवल उन्हीं के आस्वादन की वस्तु है। मैं अधम विषयी होकर भी आपकी अयाचित कृपा दृष्टि से ही इस अनन्य—लभ्य मिलन-माधुर्य के दर्शन का अधिकारी हुआ हूँ।

महाप्रभु ने मधुर स्वर से कहा—प्रिय स्वरूप ! तुम्हारी कृपा से ही मुझे इस रस का कुछ-कुछ आस्वादन मिला है—अब यह लालसा है कि, आत्म-निवेदन के कुछ पदों का आस्वादन और करूँ।

स्वरूप ने यह कह कर कि, "सभी कुछ प्रभु की इच्छा के आधीन है" गान आरंभ कर दिया—

भाव विकल ह्वै प्यारी पिय सों, बोली गद्‌गद् बानी ।
प्रीत प्रदीप जराय, बुझायजु, पावत सुख मैं जानी ॥
कालो कुटिल स्वभाव तुमरो, कपटी प्रीति तिहारी ।
भौंह नचाय तनक मुसकाय जु, मोहत हौ ब्रजनारी ॥
प्रीती रस के रसिक कहावत, प्रीति रीति नहिं जानत ।
मथुरा नगरी की नारिन के, ऋनी अपन कूं मानत ॥
नारी वध को डर नहिं तुम कूं, सुनों मधुपुरी वासी ।
जो चाहत है तुमें प्रेम सों, पड़ै तासु गल फांसी ॥
प्रीत-विबश जो प्रान तजै वह, प्रीतहि छांड न जानैं ।
प्रीत की सार गँवार ग्वारिया, का विध ताय बखानैं ॥
रस की रीति सरस सरल है, निपट गँवार न जानैं ।
राधा के यह बोल चुटीले, श्याम सुधासम मानैं ॥

महाप्रभु ने कहा--स्वरूप ! यह तो श्रीमती राधिका की रसभरी वक्रोक्ति है । इसके उत्तर में रसिकराज श्रीकृष्ण ने क्या कहा ?

स्वरूप—श्रीकृष्ण ने जो इसका उत्तर दियाहै, वह बड़ा ही सरल और सुमधुर है—उसे भी सुनिये:—

राधे तेरी महिमा को जग जानत ?
जपत निरंतर नाम तिहारो, चरनन चेरो मानत ॥
तेरी प्रीति विवश ह्वै कै मैं, खिच इत ब्रज में आवत ।
तेरे गुन गन शतयुग गाऊं, तहू अंत नहिं पावत ॥
तव यह विषम-वचन सुखदायक, मोय सुधासम लागत ।
अमल कमल नैनन की चितवन, लख तव हाथ विकावत ॥
तोसौं प्रीति छांड मेरो मन, जासौं लगन लगावत ।
सपथ खाय तव कहत जु सांची, सब सुख आश नशावत ॥

महाप्रभु—श्रीकृष्ण परम उदार हैं—परम प्रेमिक एवं निखिल रस के आधार हैं। उत्तर अत्यन्त उपयुक्त ही दीया है। इसके अनन्तर प्रेममयी का आत्म निवेदन अवश्य ही अति सुन्दर और मधुर होगा ?

स्वरूप—हां प्रभो ! श्रीमती के आत्म निवेदन के भी दो चार पद सुन लीजिये:—

प्यारे तुमैं और का अधिक बताऊं ?
तुम हो मेरे परम रतन धन, तुमसौ और न पाऊं ॥
चतुर शिरोमन तुम गुन सागर, रूप तुमारौ ध्याऊं।
बांधीं प्रेम-पाश व्रज वनिता, तुमैं छांड कित जाऊं ॥
अवला में ओगुन अन गिनती, के ते तुमैं गिनाऊं।
तिनैं त्याग अब करो कृपा तुम, यही एक चित्त चाऊं ॥
छिन विन देखे चन्द्रवदन तव,मन में अति अकुलाऊं।
जो तुम सांच न मानों मोहन, सखिअन साख दिवाऊं ॥

इसके अनन्तर स्वरूप सुधामय कंठ से फिर गाने लगे:—

अधिक अब कहा कहूं मैं प्यारे।
जनम-जनम में रहो प्रान पति, तुम ही एक हमारे ॥
तव चरनन की प्रेम डोर नैं, प्रान वांध भ्रम डारे।
दासी होय सकल तन, मन, धन अरपन कियो तिहारे ॥
वालकपन में मैंने मन में, आन विषै नहिं धारे।
जीवन जोवन जन मरजादा, तव चरनन पर वारे ॥
सोवत जागत तव सद गुनगन,होत न मन सों न्यारे।
कीयो मैं अपराध अनेकन, छिमहु जु तिनैं मुरारे ॥

दोनों कुल में अरु गोकुल में, कोउ नहीं अपनारे ।
चरन कमल तब शरन लई मैं, जान सबै सपनारे ॥
जो नहिं देखूं चन्द्रवदन छिन, मरत तभी विन मारे ।
अब न कहुँ तुम जाओ प्रानधन, सदा रहूं उरधारे ॥

महाप्रभु भावाविष्ट होकर कहने लगे—हां, इसके आगे ?
स्वरूप फिर गाने लगे:—

प्यारे तुम हो मेरे प्रान ।
तन, मन, धन, जन है तव अरपन, धर्म शील कुल मान ॥
हो तुम श्याम अखिल जग के पति, योगि धरत तव ध्यान ।
गोपी गोप दीन हैं हम अति, पूजन भजन न ज्ञान ॥
प्रीती रस के वश व्है लीनी, चरन शरन तव कान !
तुमी पती हो तुमी गती हो, भावत और न आन ॥
कृष्ण-कलंकिनि, कह-कह मेरो, करत सभी अपमान ।
हार कलंक जु डार गले में, मन सुख होत महान ॥
सती और असती जैसी हूं, तुमें सभी पहचान ।
पाय तुमें सब ही अब कीनों, तव चरनन में दान ॥

महाप्रभु—स्वरूप ! इन सब पदों में प्रेम-रसमय मधुर भजन की पराकाष्ठा है—इसी भाव में रसमय और प्रेममय चित्त की परम तृप्ति है—परन्तु प्रेममय श्रीकृष्ण के प्रत्यंगीकार-व्यंजक प्रत्युत्तर के बिना पूर्ण परितृप्ति नहीं होती । इसका उत्तर श्यामसुन्दरने क्या दिया ?

स्वरूप—श्रीमती के आत्म निवेदन के प्रत्युत्तर में प्रेममय ने जो कुछ कहा, वह भी आत्म निवेदन की पराकाष्ठा । है यह कहकर, स्वरूप कोमल मधुर कंठ से पुनः गान करने लगे:—

प्यारि तुम मम जीवन आधार ।
तव वश ह्वै ब्रजबास करत मैं, जान जु ब्रज रस सार ॥
बैठो रहत सदा यमुना तट, तेरी बाट निहार ।
निशि दिन मधुर बजावत बंशी, तेरो नाम पुकार ॥
बैठ कदंब की छांह चहूं दिश, देखत आंख पसार ।
चातक सम मम नैन चहत तव, रूप सुधा की धार ॥
तव गुनगन की सरस माधुरी, भावत मोय अपार ।
ताही सों तव प्रेम मगन ह्वै, गावत कर विस्तार ॥
जो जन जानत साधन तापै, भयो करुन करतार ।
मेरो साधन चरन शरन तव, यही एक निरधार ॥

महाप्रभु—"प्रेमानन्द-रसमय श्री श्रीराधागोविन्द के सरस भजन तत्व की यहां पर पूर्णता है" यह कहकर प्रेमानन्दोत्फुल्ल श्रीगौर-सुन्दर मौन हो गये—किन्तु गंभीरा मन्दिर में सर्वदा के लिये स्वरूप के उस सुधामय संगीत की झंकार रह गई ।

पार्षदों के सहित आनन्द लीलारस-विग्रह श्री श्रीगौरसुन्दर उस गीत सुधा के आस्वादन का अधिकार विस्तार करें ।

श्रीयुक्त रसिकमोहन विद्याभूषण देवशर्मा—रचित

नीलाचल में ब्रजमाधुरी का

हिन्दी अनुवाद समाप्त ।

अनुवादक—

श्रीबालकृष्ण गोस्वामी

श्रीराधारमण मन्दिर-वृन्दावन

वै० शु० १२ शुक्रवार सं० १९८७

[श्रीचैतन्यचन्द्रार्पणमस्तु]

श्री श्रीचैतन्य शिक्षाष्टक

करत चित्त-दर्पण को शोधन, भव-दावानल देत बुझाय।
कीर्ति-चंद्रिका चहुँ छिटकावत, विद्या वधू सु देत जिवाय ।।
उमगावत आनन्द-सिंधु को, पद-पद देत सुधा को स्वाद ।
आत्मा पोषक विजय करै जग, कृष्ण नाम कीर्तन को नाद ॥१॥

नाम अनेकन करे प्रकाशित, तिन में पूर्ण शक्ति निजधार ।
तापर भी सुमरन को कोई, नियत कियो नहिं काल विचार ॥
ऐसी कृपा आपकी भगवन्, तापर मम ऐसो दुरभाग ।
होत न तनकहु छिनपल कबहु, मेरो नाम माँहिं अनुराग ॥२॥

तृणहू सों अति दीनजान कै अपने मन में ।
सहन शीलता सदा वृक्षसम धरो सु तन में ॥
निरभिमान बन करो मान की बुद्धि सबन में ।
रखिये या विध सदा सु तन मन हरि कीर्तन में ॥३॥

धन नहिं चाहत जन नहिं चाहत, नहिं सुंदरि कविता जगदीश !
जन्म-जन्म में रहै आप में, निःस्वारथ भक्ती मम ईश ! ॥४॥

नन्दतनय ! किंकर हूँ तब मैं, पड़ो आय भवसिंधु महान् ।
कीजै कृपा तनक तो मुझपर, निज पद पंकज की रजजान ॥५॥

झरै नीर नैनन सों झरझर, वाणी गद्गद् पुलक शरीर ।
कब यह दशा होयगी मेरी, नामलेत तब होय अधीर ॥

निमिष काल मम युगसम बीतत, नयन बहत जिम वर्षाधार ।
श्रीगोविंद-विरह में मोकूं, दीखत सब सूनों संसार ॥७॥

चाहे निज पद की दासी को, कर आलिंगन दीजै सुख ।
चाहे बिन दर्शन दीये ही, निशि दिन मन में दीजै दुख ॥
जैसो भावै तैसो कीजै, बनकर कै लम्पट सिरमौर ।
तो भी बिना आपके कोई, मेरो प्राणनाथ नहिं और ॥८॥